नवनीत

हिन्दी डाइजेस्ट

रु. ३.७५

नवनीत

संस्थापक

कन्हैयालाल मुंशी श्रीगोपाल नेवटिया

भारती : स्था. १९५६ नवनीत : स्था. १९५२

*

संपादक

वीरेन्द्रकुमार जैन

सह-संपादक

गिरिजाशंकर त्रिवेदी

उप-संपादक

रामलाल शुक्ल

*

संयोजक

शान्तिलाल तोलाट

*

प्रकाशक

सु. रामकृष्णन्

*

आवरण-चित्र

डा. विष्णु भटनागर

कार्यालय : भारतीय विद्या भवन

वर्ष : ३४; : अंक १

साहित्य का परंपरा से संबंध अंचल ५

ग्रंथ-लोक उपाध्याय, डा. शर्मा ९

मैं अभिनेता बना बलराज साहनी १४

गुरुत्वाकर्षण के खोजी न्यूटन नहीं, ... शुकदेव प्रसाद २०

कलाकार गोया ने उस रात ... अनिता जैन २७

ग्रेगरियन कैलेण्डर की कहानी सुरेश गोडबोले ३०

प्रार्थना ३३

भारत में भारतीय कोई नहीं है आर. आर. दिवाकर ३४

आधुनिक बंगला कविता ... हरि ३६

मकर संक्रान्ति का माहात्म्य माइल्स डेविस ४०

स्वामी प्राणनाथ की समन्वय साधना डा. मकबूल अहमद ४४

विघटन का क्रम ... वीरेन्द्र मिश्र ४९

भारतीय कैलेण्डर ... हंस ५०

चतुर्वेद और उनकी गरिमा गिरिजाशंकर त्रिवेदी ५२

ऐसे लिखते थे महान लेखक धर्मवीर अरोड़ा ५४

चार चार अनेक विचार योगेश प्रवीन ५६

ज़ुबां ख़ामोश है ... बालकृष्ण गर्ग ६०

यदि मुझे नोबेल पुरस्कार मिल जाता तो ... कमला दास ६१

कुलपति मुन्शी मार्ग, बम्बई-४०० ००७

जनवरी १९८५

नया वर्ष (कविता) बालकृष्ण मिश्र ६४

वन्नो क्या मांगे (कहानी) सुधा ६५

चित्रकला के साहित्यिक प्रमाण

डा. दुर्गा शर्मा ६८

हठी विक्रमार्क और बेताल

रतीलाल शाहीन ७१

ग्लोकोमा : आंखों का भयंकर रोग

डा. एम. आर. जैन ७२

पाती : पांच गीत उद्भ्रान्त ७६

सतरंगे दौर (कविता)

राधेश्याम 'बंधु' ७७

नये क्षितिज (कहानी)

डा. पुष्पा जौहरी ८०

कृष्णप्रिया राधा और रुक्मिणी

आत्म प्रकाश शुक्ल ८४

बिशप टूटू : काले लोगों की आवाज

अरुण गांधी ८८

अनोखी रस्में विवाहों की संतोष ९३

एक थी सुधा . . . (कहानी)

डा. सुशीला गुप्ता ९७

हिन्दी के रवीन्द्रनाथ टैगोर

बलराम सुमन १०७

वृक्षों की पूजा राजनारायण पाण्डेय १०८

नव-वर्ष की भारतीय परम्परा हंस ११३

दो मूर्ख (चीनी लोककथा) सुरजीत ११६

प्रकृति का अनुपम उपहार मधु

हफ़ीज़ अहमद खां ११८

नोबेल पुरस्कार विजेता का

आत्मकथ्य जान स्टीनबैक १२०

पुलक छंद डा. इशाक 'अश्क' १२४

महाप्रभु का अंतिम संदेश

लाडली मोहन १२५

हाथियों के खेल और खेलों में हाथी

रामकुमार १२९

नया वर्ष (बालकथा)

शिवनारायण सिंह १३२

जाड़े का मेवा—मूंगफली

उमेशचंद्र पाण्डेय १३४

लोकोक्तियों के बोल . . .

श्रीकान्त पाण्डेय १३६

पद-चिन्हों पर अंकित मानव... दुर्गेश १४१

दो क्षण हंस न लें ?

बलवीरप्रसाद गुप्त १४४

चित्रसज्जा : ओके, शेणै, आर. डी. पुरोहित, के. रवीन्द्र, टी. ए. राणा, सतीश चव्हाण

साहित्य का परम्परा से संबंध

□

रामेश्वर शुक्ल अंचल

नीत्से ने काफी पहले घोषित कर दिया था कि ईश्वर मर चुका है। दो दशक लगभग पहले 'डेनियल वेल' ने कह दिया कि आदर्श की विचारधारा (आइडियालॉजी) का अंत हो गया है। पर ये दोनों मरने का नाम नहीं ले रहे हैं। तीसरी बड़ी शक्ति परम्परा है, जिसके दिवंगत होने की धूम प्रश्नवाचक बनी आज की क्रांतिकारी 'टेक्नालॉजी' की दुनिया में चारों ओर मची है, जबकि मानवीय भविष्य एक वक्र तनाव का सहन-केंद्र बना हुआ है। पर साहित्य और संस्कृति का घना संबंध जैसे-जैसे समझ में आता है, वैसे-वैसे परम्परा में निहित अदम्य प्राण-शक्ति का आभास भी दृढ़ होता जाता है। सभी प्रकार की आचार-भूमियों और विचार-स्रोतों की परिणति परम्परा में ही आकर होती है। परम्परा और परम्परावाद दो अलग चीजें हैं। परम्परावाद जीवन को (फलस्वरूप साहित्य को) उसकी वर्तमान मंजिल पर स्थिर कर देता है—उसे वहीं-का-वहीं रोककर आगे की प्रगति की संभावनाओं को समाप्त कर देता है। परम्परा कालानुक्रम में जो बीत गया है, उसके सार-तत्त्व को, बीते युग के विकास की प्रवहमानता के ज्ञान को लेकर चलती है और इस प्रकार वर्तमान और भविष्य को निरूपित करने वाली विशिष्ट ऐतिहासिक चेतना का साथ नहीं छोड़ती। यह चेतना रूढ़ि की शव-साधना नहीं करती, वरन् राष्ट्र की संचित सांस्कृतिक अनुभूतियों और उपलब्धियों का प्राण-रस खींचकर युग की बढ़ती-फैलती भौतिक आवश्यकताओं के अनुरूप जीवित आदर्शों का निर्माण करती है।

साहित्य के मूल्यांकन के लिए ही नहीं, उसके रसास्वादन के लिए भी परम्परा की तीव्र चेतना आवश्यक है। साहित्य को सामाजिक, ऐतिहासिक और धार्मिक (भले ही समाज की अवधारणा और परिकल्पना में, इतिहास की व्याख्या और धर्म की मूल्यगत नैतिक वांच्छा में मतभेद हो) आचार-भूमि से अलग करके देखा और समझा नहीं जा सकता। यही अंतर्भूत तीक्ष्ण चेतना हमारे समस्त ज्ञान और अन्तस्-प्रेरणा का स्रोत है।

मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा ही, चाहे वह कितनी भी रसाकुल हो, कितनी भी सोद्देश्य हो, प्रमुख और प्राणवती परम्परा है। साहित्य के सारे सौन्दर्यात्मक प्रभाव, जीवन की सारी व्याख्या और आस्था इसी

परम्परा के प्रतिफलन हैं। परम्परा साहित्य की विभिन्न, बहुवर्णी प्रवृत्तियों और प्रेरणाओं में अन्तःसलिला की तरह बहती रचनात्मक एकता को पहचनवाती ही नहीं, चरितार्थ भी करती है—वही समस्त लेखन की ऊर्जा है, वही मानस की निवृत्तिमूलक या प्रकृतिमूलक चारुता की अन्तर्दीप्ति है जो रस की संज्ञा पाती है।

परम्परावाद, परम्परा का बाह्यार्थ है जो बदलता रहता है और जिसका उसके अन्तरंग आशय के साथ कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता। परम्परावाद के मरने या त्यक्त केंचुल की तरह निष्प्राण और और निष्प्रयोजन हो जाने की बात ठीक है और प्रत्येक साहित्य काल-खण्ड में घटित होती देखी गयी है। इसी के परिणामस्वरूप परम्परा के लोकोन्मुख क्रान्तिकारी अन्तस्थ की खोज की जाती है और उसकी उस अन्तर्शक्ति को तलाशा जाता है जो लगातार नूतन होने में समर्थ है और जो काल में कभी समकालीनता के पीछे नहीं पड़ती। उसमें ध्यान और कर्म की तत्पर संप्रश्नता, सन्तुलन, समत्व की छानबीन—जीवन में उपस्थित द्वन्द्व और विरोध के बावजूद परिवर्तनशीलता का एक भीतरी गुण मिलता है। एक के बाद एक नये अनुभव आते हैं, एक के बाद एक नया विचार, एक नया विश्वास फूटता है—विकास और पतन की होतव्यताएं गुजरती हैं। पर परम्परा की विकासशील प्राणधारा के साथ ये सब समन्वित होते रहते हैं। परम्परा की यह कालव्यापिनी, कालनिरूपिणी प्रक्रिया कभी रुकती नहीं।

आज साहित्य की सब से बड़ी समस्या आवश्यकता या सम्भाव्यता जो भी कहिये परम्परा के इसी जनोन्मुख रूप को आत्मसात् करने और स्थापित करने की है। न कोई वैचारिक संकट है और न किसी प्रकार का गत्यवरोध। रचना-धर्म की आज यही आन्तरिक चुनौती है जिससे कतरा कर निकला नहीं जा सकता। सारे क्रान्तिकारी तत्व इसी आह्वान और अवतरण से जुड़े हैं। इसके लिए चारों ओर व्याप्त उत्पीड़न, प्रच्छन्न या खुले आर्थिक शोषण, जातिगत अत्याचार और पूंजीवादी अनीतिजन्य मुनाफाखोरी के रूप में चल रही खुली लूट के साथ रचना का सीधा, संवेदनशील सम्बन्ध बनना, चाहिए। कोई भी परम्परा जब नया फैलाव, नयी संगति, नया युग-बोध, यथार्थ का नया मोड़ ग्रहण करती है तो वह अपना ही अग्रनिर्माण करती है और नयी भौतिकता के साथ नयी नैतिकता को भी निर्मित करती है। छायावादी-युग में एक तीक्ष्ण भावात्मक तन्मयता साहित्य का प्राण समझी जाती थी। व्यक्तिगत विशिष्टताओं, विलक्षणताओं और अनुभूतियों के आभिजात्य के व्यक्तीकरण के उस रेशमी युग में जब समस्याओं का समाधान व्यक्ति में ढूंढा जाता था तो प्रेमचन्द ने साहित्य में निजी भावनाओं के स्थान पर सामाजिक आवश्यकताओं का निरूपण किया। सैकड़ों

वर्षों से चली आ रही परम्परा को उन्होंने सामूहिक और सामाजिक चेतना की ओर मोड़ दिया। जिस सामाजिक संघर्ष की झलक साहित्य में यदा-कदा ही मिलती थी उन्होंने लेखन का आदर्श बना दिया।

पराधीन भारत के आज अड़तीस वर्ष से आजाद देश की परिस्थितियां भिन्न हैं और बराबर नयी-नयी पैदा हो रही हैं। जनता में जो आत्मबल, आत्मविश्वास और आत्मगौरव जागृत और परिपुष्ट हुआ है वह गुलाम काल-खण्ड में सम्भव न था। अपने अधिकारों की ऐसी तीव्र और तीक्ष्ण चेतना मनुष्यत्व की प्राणशक्ति और जीवन की इच्छा के रूप में ऐसी उद्दाम गति के साथ तब व्यक्त और मुखर न हो पाती थी। इसलिए, आज साहित्य की बन्धनहीनता की, आजाद को आजाद समझने की और तदनुरूप परिस्थितियों की सृष्टि करने की अकुलाहट, कलामय शक्ति और नये-नये रचना-शिल्प के साथ अभिव्यक्त होगी ही। यह अपरम्परा नहीं है—अपनी सदा की जानी, जियी और सुख-दुःख की संगिनी जीवनदात्री परम्परा ही है जो नवसृजन की प्रेरणा और वैसी ही निर्बन्ध शक्ति लेकर सुख-सौन्दर्य और कला को जन्म दे रही है—रम्यता और यथार्थता की नयी दुनिया बसा रही है। हमें इसे परम्परा का लोकोन्मुख रूप ही मानकर इस अभिनव जीवन-तरंग को स्वीकार करना है।

अपरम्परा तो वहां है जहां जनोन्मुखता से कटकर नौकरशाही संस्कारों की पूजा पनपती है और स्वाधीन को स्वाधीन समझना अपराध हो जाता है। अपरम्परा कथ्य को—जीवनानुभूति को अधिकाधिक निर्भीक बनाने में नहीं, उसे पूरे-के-पूरे आवेग और आघात के साथ कहने में नहीं, सम्पन्नों और विपन्नों के बीच बैठी हुई धरती और कटे हुए आकाश की हिमायत करने में है—कुछ की सुख-सुविधा के लिए स्वाधीनता के पूरे हरे-भरे जंगल को काटने वाले और सत्ता के घने साये के अंधेरे में बेचने वालों की ताज़ीम में है। हमारी परम्परा चरित्र-बल, प्रतिरोध और प्रतिकार की है, स्वीकृति और शिरोधार्यता के रंग-बिरंगे सभा-कक्ष का 'फर्नीचर' बन कर जीने की नहीं। साहित्य में उसके पूर्व-स्वीकृत रूप के प्रति उसके अन्तरंग और बहिरंग के प्रति जहां भी अस्वीकार और विरोध का स्वर मिले वहां हमें बिना किसी मतवाद के घेरे में पड़े उसे परम्परा का नया आयाम ही मानना चाहिए जिसमें वैज्ञानिक जैसी बुद्धि-व्याख्या, दार्शनिक जैसी सुदूर-व्यापिनी अन्तर्दृष्टि और कलाकारोचित तीव्र भावावेग जीवन के मार्मिक और स्थायी स्वरूपों के साथ आता जा रहा है। साहित्य सदैव अपनी अनुभूतियों से लाभ उठाते हुए उनका बौद्धीकरण करता है और अनुभूतियों के इस नित्य नये विवेकीकरण में ही साहित्य की सार्थकता है।

—दक्षिण सिविल लाइन, पचपेढ़ी, जबलपुर

□

ग्रंथलोक

रघुवंश महाकाव्य

प्रणेता : विश्व कवि कुलगुरु कालिदास, अनुप्रणेता : श्रीनिधि द्विवेदी; कुंकुम प्रकाशन, नाग निकुंज, जवेरी बाजार, बंबई-२; मूल्य २५ रुपये।

संस्कृत के महाकाव्यों में 'रघुवंश' का विशिष्ट स्थान है; यह राष्ट्रीय सांस्कृतिक महाकाव्य है। संक्षेप में मनुवंश एवं सविवरण रघु के पिता दिलीप से लेकर २१ पीढ़ियों का इतिहास है। रामचरित्र बीचोंबीच आ जाता है। ख्यातनामा पत्रकार तथा आध्यात्मिक प्रवक्ता स्वामी अखंडानंद सरस्वती ने संक्षेप में भूमिका में कहा है—'यह एक कठिन कवि कर्म है, किसी महाकवि की रचना को भाषांतरित करना वह भी एक पद्य का अनुवाद एक ही पद्य में। मैं इस कृति को देखकर बहुत आनंदित हुआ हूं। और दूसरे लोग भी इसका आनंद लें, यह अनुरोध करता हूं।'

राजप्रासादों से लेकर कुटिया तक के जीवन का इसमें आदर्श चित्रण है, भारत की सीमा के अन्तर्गत ईराक, ईरान और कंबोडिया आदि देशों का वर्णन है। यहां की आदर्श शासन व्यवस्था, आदर्श जीवन, आदर्श रणनीति, षड्ऋतु वर्णन हृदयस्पर्शी है। गौसेवा का महत्व भी भली भांति अंकित हुआ है। लंका से लेकर अयोध्या तक के तत्कालीन भूगोल का सुन्दर चित्रण है। 'पुष्पक' द्वारा राम का सपरिवार प्रयाण पठनीय है। सीता को विरहकाल के स्थान दिखाते हुए राम कहते हैं :

'यह माल्यवान गिरि शृंग लखो
जो करता नभ का आलिंगन।
बादल ने मेरे साथ यहां
बरसाये थे करुणा के कण।

काव्य के नवरसों का यथास्थान यथार्थ चित्रण है। कालिदास के संबंध में गवेषणापूर्ण जानकारी भूमिका में दी गयी है। जिसका निष्कर्ष है कि कालिदास अनेक हुए हैं—परंतु कालिदास प्रथम दो हजार चालीस वर्ष पूर्व उज्जयिनी में सम्राट विक्रमादित्य की सभा को अलंकृत करते थे। वे कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे तथा ब्रह्मावर्त 'बिठूर' उनकी जन्मभूमि है।

रघुवंशियों के जीवन आदर्श कैसे थे, इनका वर्णन प्रारंभ में कवि ने दिया है :

आजन्म शुद्ध संस्कारों से
दृढ़कर्मी शुभ फल पाते थे।

धरती के शासक आ समुद्र
रथ स्वर्गलोक तक जाते थे।
विधिवत करते थे अग्निहोत्र
याचक मनवांछित पाते थे।
जैसा अपराध दंड वैसा
युग धर्म सदा अपनाते थे।
बचपन में वे विद्याभ्यासी,
यौवन में वे गृह सुख भोगी।
मुनि वृत्ति बुढ़ापे में रखते
तन तजते थे बनकर योगी।

'उपमा कालिदासस्य' का परिचय प्रत्येक छंद में मिलता है। अनुवाद मौलिक जैसा लगता है, यह पठनीय, मननीय एवं संग्रहणीय है। —आनंद उपाध्याय

०००

आतंक

संयोजन : धीरेन्द्र शर्मा; सम्पादक : नंदल हितैषी; प्रकाशक : 'अन्तरा' प्रकाशन, ५१ श्रीसचन्द्र वसु मार्ग, इलाहाबाद; पृष्ठ संख्या : २३६; मूल्य : सजिल्द २५ रु., सामान्य प्रति २० रु.

'आतंक' साहित्यिक एवं सांस्कृतिक युवा मंच 'अन्तरा' की प्रथम प्रस्तुति है। इसके अंतर्गत लघुकथा बनाम पुलिस विभाग से संबंधित सारगर्भित सामग्री संग्रहीत है।

प्रारंभ में 'कहानी आतंक की' शीर्षक के अंतर्गत धीरेन्द्र शर्मा ने अपने जोरदार वक्तव्य में स्पष्ट रूप से इस सहयोगी कृति के मार्ग में आनेवाली कठिनाइयों, झूठे आश्वासनों और सतही शब्दों का भंडाफोड़ किया है। उन्होंने अपने ढंग से लघुकथा का संक्षिप्त इतिहास और उसकी अवधारणा की सटीक व्याख्या की है।

इस वक्तव्य के भीतर जीवन का कटु अनुभव, रचनाधर्मी यथार्थ और सत्य आदि उभरकर सामने आ गये हैं। उदाहरण के लिए देखिए—'अपनत्व के समूचे मानदंड के आधार पर मैं अपनों को सिर्फ अपना समझता था जिसमें किसी को भी 'असज्जन' स्वीकार करने की कल्पना भी असम्भव थी, लेकिन हुआ यह कि जो मेरे लिए हार के फूलों की तरह प्रिय थे वे सौन्दर्य और मकरन्द के आवरण में तक्षक निकले।' (धीरेन्द्र शर्मा, पृष्ठ : ११) आगे चलकर इस युवक लेखक ने आधुनिक जीवन की अनेक विसंगतियों, वर्जनाओं एवं विडम्बनाओं को अपनी शक्तिशाली लेखनी से जनता के सम्मुख तटस्थ दो टूक भाव से रख दिया है।

सम्पादक नंदल हितैषी ने अत्यंत कुशलता के साथ अपने वक्तव्य 'यात्रा के पूर्व' शीर्षक के अंतर्गत लघुकथा को परिभाषित किया है। लघुकथा क्या है, इसे स्पष्ट करने के लिए जहां स्वनामधन्य अनेक लेखक अनेक पृष्ठ खराब करने के बावजूद सही रूप में उसे उपस्थित नहीं कर सके हैं, वहीं इस युवक लेखक ने लघुकथा के कलेवर और उसकी सीमा को कम से कम शब्दों में उजागर कर दिया है। देखिए—'अनुभूतियों के फलक पर जीवन-दृष्टि में जब कुछ एकाएक कौंधता

है और अंदर तक रिसता है कुछ इस कदर कि 'वाह' की जगह 'आह' फूटता है तब लघुकथा का जन्म होता है (पृष्ठ : १५) लघुकथा में रिझाने की बजाय सताने की क्षमता होनी चाहिए। इसी लेख में पुलिस विभाग का संक्षिप्त इतिहास भी मुखरित हुआ है।

यह पुस्तक तीन सोपानों में विभक्त है। प्रथम सोपान के अंतर्गत 'पुलिस संगठन / विचारों के घेरे में' के भीतर पुलिस विभाग में व्याप्त भ्रष्टाचार, आकर्षण के कारण, परिस्थितियां, सामाजिक घृणा और विस्फोटक स्थिति निष्कर्षित है। प्राय: सभी लोग आंख मूंदकर समूचे पुलिस विभाग को व्यर्थ और निकम्मा समझकर उसे कोसते ही रहते हैं, किन्तु इस संग्रह के लेखकों ने उनकी विवशता को भी चित्रित किया है।

द्वितीय सोपान के भीतर 'लघुकथाएं क्या ? क्यों ? कहां . . .' पर विशेष रूप से चर्चा की गयी है। इसमें कई रचनाएं बोलती हैं। उनमें अनुभूति की गहराई, विषय की पकड़ जीवन के यथार्थ की अप्रिय सचाई, शैली का बांकपन और टकसाली भाषा में कसी हुई अभिव्यक्ति मन को मोह लेती है।

अंतिम सोपान तीन में विभिन्न लेखकों की कुल १११ लघुकथाएं संग्रहीत हैं। वे सब आज के पाठकों को आमंत्रित करती हैं। वे हमें दृष्टि और दर्पण दोनों प्रदान करती हैं। अस्तु, हम डंके की चोट पर कह सकते हैं कि यह संग्रह पठनीय है और इन युवक लेखकों में प्रभूत शक्ति, संवेदना और सामाजिक न्याय को पहचानने की क्षमता है।

०००

'रामचरित मानस : तत्व-दर्शन और लोक-चेतना'

लेखक : डॉ. शारदा प्रसाद शर्मा; प्रकाशक : हिन्दी साहित्य परिषद, भिमानी रास्ता, माटुंगा, बम्बई-४०००१९; पृष्ठ संख्या : ३९०; मूल्य : पचास रुपये।

प्रस्तुत ग्रंथ डॉ. शारदा प्रसाद शर्मा के प्रौढ़ चिन्तन, कारयित्री प्रतिभा, ओजस्वी पाण्डित्य एवं रामचरित मानस में उनकी गहरी दिलचस्पी का सुफल है। जैसा सर्वविदित है कि रामचरित मानस की कथा सर्वप्रथम भगवान् शिव के मानस में स्फुरित हुई। उनके मन में ही इसका स्वरूप निर्धारित हुआ। वे ही इसके प्रथम प्रोक्ता हैं। शिव ने उस कथा का प्रथम अधिकारी पार्वती को माना। तत्पश्चात काक भुशुण्डि ने वही कथा पक्षिराज गरुड़ को सुनाई और तदोपरान्त परम विवेकी मुनि याज्ञवल्क्य ने वही कथा भरद्वाज ऋषि को सुनाई। फिर महात्मा तुलसीदास ने भक्तों एवं सन्तों तक उसका विस्तार किया।

'तुलसी ने घाट मनोहर चारि' कहकर मानस के चार घाटों की ओर संकेत किया है। मानस की व्याख्या की परंपरा में

क्रमशः शिव-पार्वती संवाद को ज्ञानघाट, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज संवाद को कर्मघाट, काक भुशुण्डि-गरुड़ संवाद को उपासनाघाट और तुलसी-संतजन-घाट को विनय या शीलघाट बताया है।

इसी ग्रंथ पर डॉ. शर्मा को बम्बई विश्वविद्यालय से पी-एच. डी. की उपाधि मिली है। इस कृति में कुल आठ अध्याय हैं। प्रथम अध्याय के अंतर्गत तुलसी के व्यक्तित्व और सृजन का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। द्वितीय अध्याय में रामचरित मानस के अध्ययन की समस्याओं, स्वरूप, प्रयोजन और लक्ष्य की विवेचना है। अध्याय तीन के भीतर रामचरित मानस के 'प्रमुख प्रवक्ता' याज्ञवल्क्य मुनि के व्यक्तित्व, सृजन एवं तत्व-दर्शन पर विचार करते हुए उसके साथ तुलसी के व्यक्तित्व एवं तत्व-चिन्तन के साम्य की ओर संकेत किया गया है। चतुर्थ अध्याय में वैदिकयुग से लेकर तुलसी के युग तक की दार्शनिक एवं प्रमुख साधना-प्रणालियों की सम्यक विवेचना की गयी है। पांचवें अध्याय में तुलसी के तत्व-चिन्तन का विस्तार के साथ निरूपण किया गया है। छठे अध्याय में तुलसी की भक्ति के स्वरूप का मूल्यांकन प्रस्तुत है। अध्याय सात के अन्तर्गत रामचरित मानस में लोक-चेतना के विविध पक्षों पर विभिन्न कोणों से प्रकाश डाला गया है, तथा अन्तिम अध्याय आठ के भीतर निष्कर्ष स्वरूप 'मानवता को तुलसी का प्रदेय' विषय पर संक्षिप्त चर्चा है।

उपर्युक्त सारी सामग्री के अध्ययन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यह शोध-प्रबंध अत्यंत प्रौढ़, विचारोत्तेजक, खोजपूर्ण एवं सुरुचिपूर्ण सामग्री से भरपूर है। शोधकर्ता ने अपने को पूर्व लिखित आलोचनात्मक अथवा शोधपरक साहित्य से ही सारी सामग्री संकलित करने के प्रयास से पृथक रखा है और उसने स्थान-स्थान पर अपने ढंग से नवीनरूप में मौलिक व्याख्याएं की हैं। केवल पहले से ही निर्मित या प्रस्तुत सामग्री के आलोडन और सहमति न होने पर उस सामग्री का यथास्थान खंडन और अपने मत का मंडन नहीं किया गया है। इसलिए यह स्पष्ट है कि लेखक (अनुसंधाता) का यह प्रयास नयी व्याख्या को ध्यान में रखकर किया गया है। अस्तु, शोध के क्षेत्र में यह कार्य श्लाघ्य है। शैली और कथ्य दोनों दृष्टियों से यह ग्रंथ उच्च साहित्यिक स्तर का है।

तुलसी के तत्व-चिंतन और लोक-चेतना पर पहले भी लिखा गया है, परन्तु वहां इसका वस्तुनिष्ठ सम्यक चित्र नहीं उभरा है। डॉ. शर्मा ने बड़े मनोयोग के साथ इस ग्रंथ में विषय का तलस्पर्शी चित्र उजागर किया है।

इस ग्रंथ के कुछ अध्याय विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उदाहरणार्थ—इसके तृतीय अध्याय में 'रामचरित मानस के प्रमुख-वक्ता : याज्ञवल्क्य' के संबंध कई विचारो-

त्तेजक तथ्य युक्तियुक्त रूप में प्रस्तुत किये गये हैं ।

इसी प्रकार पांचवें अध्याय के अंतर्गत रामचरित मानस में तत्व-चिन्तन तथा अवतार की अवधारणा आदि पर प्रचुर तर्कयुक्त तथ्य सामने लाये गये हैं और अध्याय छह के भीतर तुलसी की भक्ति : स्वरूप और साधना के संदर्भ में अत्यंत नवीन तथ्य पर विवेचन प्रस्तुत किया गया है । यहीं हम यह भी संकेत करना अनिवार्य समझते हैं कि लेखक की अनेक स्थापनाओं को यथारूप स्वीकार करना हमारे लिए कठिन है, जैसे याज्ञ-वल्क्य को मानस का प्रमुख प्रवक्ता और तुलसी को याज्ञवल्क्य परम्परा में फिट करने का प्रयास आदि । परन्तु जिज्ञासु पाठक के हेतु इस ग्रंथ में प्रभूत मात्रा में नवीनतम और मौलिक सामग्री जुटायी गयी है ।

साहित्य में मतभेद के लिए तो सदैव गुंजाइश रहती है । शोध और समीक्षा के समन्वित फलक पर निराकार ब्रह्म तथा अवतारी राम, सगुण-निर्गुण भक्ति, ज्ञान, कर्म, विराग और आत्मबोध आदि पर, अत्यंत तटस्थ भाव से सारगर्भित अध्ययन प्रस्तुत है ।

इस कृति के आलोचनात्मक अध्ययन के आधार पर हमें यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं होता है कि यह एक अत्यंत सुविचारित एवं सुनियोजित वस्तुनिष्ठ अध्ययन है । इसमें अनेक नये क्षितिजों का उद्घाटन हुआ है । तुलसी के काव्यरसिकों तथा जिज्ञासुओं को यह ग्रंथ प्रभावित किये बिना नहीं रहेगा, ऐसी हमारी निश्चित धारणा है ।

हिन्दी जगत में तो इसका आदर होगा ही, हिन्दीतर भारतीय भाषाओं में भी इसका संदर्भ ग्रंथ के रूप में उल्लेख होगा, क्योंकि इसमें संक्षेप में सारी भारतीय चिन्तन-सरणियों का विवेक पूर्ण दिग्दर्शन कराया गया है ।

रामकथा के मर्मज्ञ डॉ. शर्मा सामाजिक न्याय-व्यवस्था, शिष्टता, चरित्रबल एवं सुसंस्कारों के साथ जीवन में प्राचीन मूल्यों की स्थापना के प्रबल आकांक्षी हैं यही कारण है कि उद्योग-धंधे की पुष्कल जिम्मेदारियों को सहजभाव से निभाते हुए तथा सघन व्यस्ततापूर्ण सामाजिक दायित्वों को वहन करते हुए उन्होंने अपनी प्रबल इच्छा शक्ति के बल पर इतना समय और श्रमसाध्य अध्ययन सुचारु रूप से पूरा कर लिया ।

ग्रंथ के रचयिता डॉ. शारदा प्रसाद शर्मा ने निश्चय ही हमारे समाज को एक ऐसी कृति प्रदान की है, जो बहुत दूर तक हमें प्रभावित करती रहेगी । अतएव वे हमारी प्रशंसा के अधिकारी हैं । हमें आशा है कि वे भविष्य में भी हिन्दी साहित्य और दर्शन को इसी प्रकार अपनी कृतियों से सुसज्जित करने का सद्उद्योग करते रहेंगे ।

—डॉ. रामसकल शर्मा

□

मैं अभिनेता बना

□ बलराज साहनी

मैंने कई बार सोचा है कि क्या मेरे अंदर कोई ऐसा जन्मजात संस्कार था, जिसके विकसित होने से मैं अभिनेता बन गया।

आदमी के मन में कई ऐसे विचार उठते हैं, जिन्हें वह कोई महत्व नहीं देता, और उनकी ओर से मुंह मोड़ लेता है। मेरी नज़र में इसी प्रकार का यह विचार है कि आदमी क्या जन्मजात कलाकार होता है, या बनता है? एक कलाकार के नाते मैं इसे फिजूल-सा सवाल समझता हूं। और अगर मैं इस पर सोच-विचार करने के लिए मजबूर होता हूं, तो इसलिए नहीं कि मुझे इसमें कोई दिलचस्पी है, बल्कि इसलिए कि मेरे इर्द-गिर्द बहुत से लोग इस भ्रम का शिकार हैं कि अभिनय-कला एक जन्मजात गुण है।

ज़रा अपनी बात करूं। सात पीढ़ियों से हमारे खानदान में कोई अभिनेता पैदा नहीं हुआ है। फिर पिछले दो सौ साल से पंजाब के इतिहास में थियेटर नाम की चीज़ का ज़िक्र नहीं मिलता। हां, भांड-मरासियों की नकलों का ज़िक्र ज़रूर आता है। लेकिन मैं भांड-मरासियों के खान-दान में से नहीं हूं। अगर होता, तो लोगों के सामने अभिनय संबंधी अपने जन्मजात संस्कारों का ज़िक्र करने से भी शर्माता। तो फिर मेरे अन्दर अभिनय कला कहां से आयी?

मेरे कई दोस्त खुद को जन्मजात अभिनेता मानते हुए यह दलील देते हैं कि उन्हें बचपन से ही दूसरों की नकलें करने का शौक था। यह दलील सचमुच विचार करने योग्य है। मैं भी जब अपने बचपन के दिनों को याद करता हूं, तो वे रोल मेरे सामने आते हैं, जो मैं किया करता था।

मेरे बचपन के ज़माने में, रावलपिंडी में 'छाछी मोहल्ला' असली अर्थों में छाछियों का मोहल्ला था। सिर्फ दो-चार खत्रियों के घरों को छोड़कर बाकी सब लोग बैलगाड़ी और तांगा चलाने वाले मुसलमान थे। उन दिनों मोटरें-बसें नयी-नयी ही आयी थीं। कश्मीर का व्यापार तांगों-बैलगाड़ियों द्वारा होता था। छाछियों का बहुत अच्छा कारोबार था। हमारे मोहल्ले में से हर दूसरे चौथे बैल-गाड़ियों का काफिला कश्मीर के लिए रवाना होता था या वापस आता था। बहुत रौनक होती थी। हर शुक्रवार के दिन साइयों की टोली हमारे पड़ोसी बाबा नादरू के आंगन में आती थी। उन साइयों के पास सितार और तबले और कई दूसरे

साज होते थे। उनके लम्बे बाल थे, और गले में बिल्लौरी मालाएं थीं, और कानों में कुंडल झूलते थे। वे हरे रंग के लम्बे चोगे पहने होते, और अपने हाथों में झंडे पकड़े रहते। इस सब कुछ की बदौलत एक अजीब-सा दृश्य दिखाई दिया करता। वे साईं कान पर हाथ रखे बहुत लम्बी हांक लगा कर गाते। उनके हृष्ट-पुष्ट चेहरे दहकने लगते, जिन्हें देखकर मोहल्ले की औरतें कहा करतीं, 'हाय इनकी तो ताब नहीं लायी जाती।' मुझे कुछ याद नहीं कि वे क्या गाते थे, और किस सुर में गाते थे। लेकिन यह जरूर याद है कि हफ्ते के बाकी छह दिन मोहल्ले के बच्चे साईं बनकर घूमते, और उसी प्रकार कान पर हाथ रखकर गाते, और काल्पनिक सितार बजाते। मैं बाबा नादरू का रोल करता। हैरानी की बात तो यह है कि मोहल्ले के बड़े-बड़े बुजुर्ग तक हमारा गाना सुनते थे, और दाद देते थे। हमें कभी भी अपनी कला-कुशलता पर शक नहीं हुआ था।
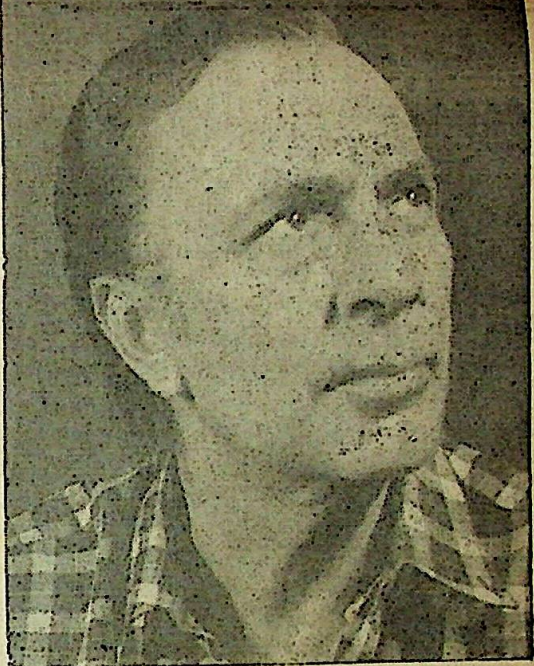
हमारे घर के सामने खाली अहाता था। वहां चचा बख्शी का टाल था। एक तरफ जलानेवाली लकड़ियों के ढेर लगे होते और दूसरी तरफ पुरानी इमारती लकड़ियों के ढेर। कश्मीरी उन इमारती लकड़ियों को चीरते। इमारती लकड़ियों का ढेर एक 'पहाड़' सा लगता, जिसमें कई गुफाएं थीं, कई मोर्चे थे। खाना नाम के लड़के का बाप फौज में रसालदार था। ज्यों ही शाम होती, रोटी के एक टुकड़े पर भुने हुए आलू रखकर घर से खाना निकल पड़ता, और हमारे पास आकर ऊंची आवाज में कहता, 'हमारी गली में कुत्ता भौंका, एक घूंट पानी पी लो।' यह आवाज सुनते ही मोहल्ले में चारों ओर 'पी लो' की आवाजें सुनाई देने लगतीं, और देखते-देखते खाना के सिपाही जमा हो जाते। टाल में एक किले पर खाना कब्जा कर लेता, और दूसरे किले पर चचा बख्शी का

बेटा, खैराती। खाना के किले में तोपें, बन्दूकें, और मशीनगनें होतीं, जिनकी नालियां सरकंडों को अन्दर से साफ करके बनायी गयी होतीं। वे सरकंडे कम्पनी बाग के पिछले हिस्से में, नदी के किनारे पर बहुत बड़ी संख्या में पैदा हुआ करते थे। उन्हें वहां से उखाड़कर लाना बहुत मर्दानगी का काम था। चचा बख्शी राजपूत था, सो खैराती तलवार का धनी था। उसके किले में तलवारें, भाले, ढालें आदि होतीं। बड़ी-बड़ी लड़ाइयां लड़ी जातीं। और जब मैदाने-जंग में ज़ख्मी बहादुरों की चीख-पुकार सुनायी देतीं तो उनके माता-पिता भी वहां आकर उस जंग में शामिल हो जाते, और तब मुकाबला और भी सख्त बन जाता।

कोहमरी वाली सड़क के पास एक बड़ा मैदान था, जिसे कमेटी कहते थे, क्योंकि वह म्युनिसिपल कमेटी का इलाका था। वहां हर साल पशुओं की मंडी लगती थी। दूर-दूर से लोग अपने पशु लेकर वहां आते और उनका सौदा होता। उस मौके पर कुत्तों की लड़ाई, मुर्गों की लड़ाई, बटेरों की लड़ाई आदि कई प्रकार के तमाशे होते। सर्कस भी लगता, और नेज़ाबाज़ी भी होती। मंडी के खत्म होते ही वहां के खेल-तमाशों की नकल हमारे मोहल्ले में शुरू हो जाती। बोधराज का पिता मिशन स्कूल में ड्रिल-मास्टर था। सो सर्कस के मामले में बोधराज हमारा मुखिया बनता। उसने एक ऐसी चाबुक बना ली थी, जिसमें से पटाखे की-सी आवाज निकलती थी। फिर, उसे जादू के कई आश्चर्यजनक खेल आते थे। उसकी तीरंदाज़ी का जवाब नहीं था। उसकी छाती पर रखकर तोड़ने के लिए हमने गलियों के सिरों पर लगे हुए कई पत्थर उखाड़ लिये थे।

मेरे माता-पिता आर्य समाजी विचारों के थे। सो मैं मोहल्ले में हर किसी के घर में—हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनों के घरों में—यज्ञ, हवन आदि करने जाता। अज़ान होते ही मेरा छोटा भाई टीन का डिब्बा पकड़ लेता, और उसे बजाता, शोर मचाता, गली-मोहल्लों में घूमता हुआ ऊंची आवाज में पुकारता, 'उठो, मुसलमानो, रोज़े रखो! ....'

यह सब अभिनय नहीं तो और क्या था! हम जो कुछ अपने से बड़ों को करते हुए देखते थे, वही खुद करने लग जाते थे। वह सब कुछ बड़ों की नज़रों में अभिनय नहीं, खेल था, हंसी की चीज़ थी। लेकिन बच्चों की नज़रों में वह खेल या हंसी की चीज नहीं थी। उन खेलों में हम इस प्रकार गंभीर और एकाग्र होकर लीन हो जाते थे, जिस प्रकार महान अभिनेता कोई भूमिका करते समय उसमें खो जाते हैं। मनोविज्ञानियों का कहना है कि इन खेलों द्वारा प्राप्त की हुई शिक्षा डंडे के ज़ोर से दी गयी शिक्षा से कई गुना ज़्यादा लाभदायक सिद्ध होती है। खेलों द्वारा दी जानेवाली शिक्षा-पद्धति आज पूरी तरह परवान की जा चुकी है।

सो, अगर मैं यह कहूं कि वचपन में मुझे अभिनय का वहुत शौक था, तो साथ में मुझे यह भी मानना पड़ेगा कि मेरी उम्र के हर वच्चे को ही अभिनय का शौक था। खाना फौजी परेड की नकल वहुत अच्छी करता था, मैं दफ्तर लगाने और हवन आदि करने में उस्ताद था, अकरम तांगा चलाने में लाजवाव था, वोधराज शिक्षक वनने में प्रवीण था। लेकिन मेरे वचपन के इन साथियों में से कोई भी अभिनेता नहीं वना। आखिर मुझे कौन-सा सुरखाव का पर लगा हुआ था कि मैंने अभिनय को अपना पेशा वना लिया? मेरे वचपन के वे साथी आज पता नहीं कहां हैं, और क्या कर रहे हैं? मैं यह वात किस आधार पर कह सकता हूं कि मैं क्योंकि अभिनेता हूं, इसलिए कलाकार हूं, और मेरे वे साथी आज जो काम कर रहे हैं, वे कलात्मक नहीं हैं, यह कहना अन्याय होगा, क्योंकि मुझे अपने अन्दर ऐसा कोई वड़प्पन नज़र नहीं आता।

वचपन में मुझे स्टेज पर आने का भी तजरुवा हुआ है। उसका जिक्र करना भी ज़रूरी है।

आर्य समाज का सालाना जलसा था। पिताजी ने मुझे उठाया और वेदी के पास रखी मेज पर खड़ा कर दिया। तव एक व्यक्ति ने दर्शकों के सामने ऐलान किया कि अव यह वच्चा वेद-मंत्र सुनायेगा। मुझे कुछ याद नहीं कि मेरे मुंह से कोई मंत्र निकला था या नहीं; पर यह ज़रूर याद है कि अचानक सैकड़ों आंखों को अपनी ओर घूरते हुए देखकर मेरे दिल में दहशत पैदा हो गयी थी। मेरी टांगें कांपने लगी थीं, सिर चकराने लगा था, और मैं चाहता था कि कुछ वोलूं, लेकिन मेरी वोलने की शक्ति जवाव दे चुकी थी। कुछ ही देर के वाद लोगों ने तालियां वजानी शुरू कर दी थीं। पता नहीं, वे मेरी मज़ाक उड़ा रहे थे या सचमुच ही मैंने कोई मंत्र सुनाया था जिसकी वे दाद दे रहे थे। तालियां सुनकर तो मेरी रही-सही शक्ति भी जवाव दे गयी थी, और मैं रोने लगा था।

हमारे स्कूल की पढ़ाई शुरू होने से पहले, सुवह प्रार्थना हुआ करती थी। सभी विद्यार्थी अहाते में कतारें बनाकर खड़े हो जाते। पंडितजी प्रार्थना करते और थोड़ा-सा उपदेश भी देते। उसके वाद कुछ लड़कों को एक टोली भजन गाती। मैं भी उस टोली में होता और वड़े शौक से गाता। इसमें मुझे कभी झिझक महसूस नहीं हुई थी। एक वार हेडमास्टर ने मुझे आर्य समाज के साप्ताहिक जलसे में गाने के लिए कहा। अजनवी आंखों को अपनी ओर घूरते हुए देखकर मेरा फिर वही हाल हुआ, हालांकि उस समय मेरी उम्र वारह-तेरह साल की थी। मैं घवराहट में वहुत ऊंची आवाज़ में गाने लगा, और वेसुरा हो गया। मास्टरजी ने मुझे उसी समय स्टेज से नीचे उतार दिया। उस अपमान का मन पर गहरा असर हुआ। मेरा गाने का शौक हमेशा के लिए जाता रहा।
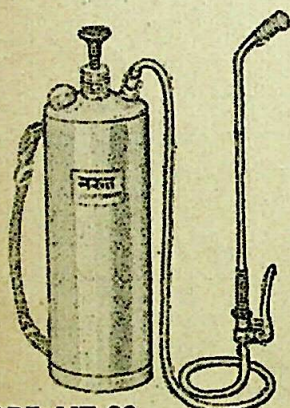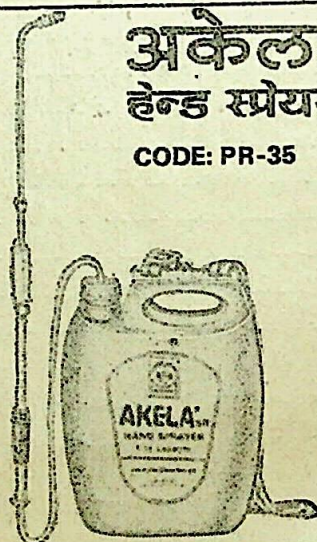
इसके विपरीत, मेरे कई साथी आर्य समाज के जलसों में निडर होकर वेद-मंत्र पढ़ा करते थे, और स्टेज पर जाकर भजन गाया करते थे। संभव है कि उनमें अभिनेता बनने की प्रतिभा मुझसे ज्यादा थी। लेकिन बड़े होने पर उनमें से कोई भी अभिनेता नहीं बना। साथ ही, मैं यह कहने का भी साहस करता हूं कि अगर किसी ने मुझे भी स्टेज पर खड़ा होने और दर्शकों की आंखों का मुकाबला करने की तरकीब सिखा दी होती तो शायद मैं इतना असफल न होता।

फिल्मों में बच्चों को सुन्दर अभिनय करते हुए देखकर लोग कई बार यह भूल जाते हैं कि उन बच्चों को बड़ी मेहनत और सावधानी से अभिनय के गुर सिखाये गये होते हैं। अगर दूसरे बच्चों को उसी मेहनत और सावधानी से अभिनय करना सिखाया जाये, तो कोई कारण नहीं कि वे भी अच्छा अभिनय करके न दिखायें। यह भी देखा गया है कि जो भी व्यक्ति बचपन में अच्छा अभिनय किया करता था, वह बड़ा होने पर सफल अभिनेता नहीं बन सका।

इसके उल्टे, संसार के कई ऐसे महान अभिनेता हैं, जो बचपन में कभी स्टेज पर गये ही नहीं थे।

यही कारण है कि मैं आज तक जन्मजात कलाकार होने के सिद्धांत को मान नहीं सका हूं।

मैं इस सिद्धांत को न केवल अस्वीकार करता हूं, बल्कि कलाकार के लिए बहुत हानिकारक भी समझता हूं, क्योंकि यह उसे अहंकार, आडंबर, आत्म-प्रदर्शन और आलस्य का हमेशा के लिए शिकार बना देता है।

प्रस्तुति : सुखबीर

□

पराजय की उपलब्धि

स्कूल में कहानी प्रतियोगिता का आयोजन हुआ तो एक महीने का समय दिया गया। बालक अर्नेस्ट हेमिंग्वे को यह बड़ा आश्चर्यजनक लगा कि एक कहानी लिखने में भला एक माह का समय लगता है। अतः अवधि के अंतिम दो दिनों में आनन-फानन कहानी लिखकर मेधावी हेमिंग्वे ने दे दी और परिणाम सुनने के लिए पूर्ण आश्वस्त होकर स्कूल पहुंचा।

आशा के विपरीत पुरस्कार किसी अन्य छात्र को मिला। हेमिंग्वे घर आकर अपनी पराजय पर खूब रोया। बहन ने समझाया, 'तू हर काम अंतिम क्षणों में करने की आदत के कारण ही पराजित हुआ है। इस पराजय को अपना उत्कर्ष मान और नियमपूर्वक सब काम करने की आदत डाल।'

इस सीख को हेमिंग्वे ने अपना आदर्श बना लिया और साहित्य में प्रसिद्धि के शीर्ष-स्थान पर पहुंचकर नोबेल पुरस्कार प्राप्त किया।

—सुधीर निगम

□

हमारे गौरवशाली अतीत का एक पन्ना

गुरुत्वाकर्षण के खोजी न्यूटन नहीं, भास्कर थे

□ शुकदेव प्रसाद

भारतीय इतिहास का गुप्त काल हिन्दू दर्शन और भारतीय संस्कृति के विकास का युग था। इस युग में भारतीय ज्योतिष अपनी पराकाष्ठा पर थी जिसका श्रेय कई विद्वानों—आर्यभट, वराहमिहिर, तथा भास्कर आदि को जाता है।

इन विद्वानों की ज्योतिर्विदीय मान्यताएं आज भी उतनी ही सही हैं, जितनी तब थीं। इनके ग्रन्थों के बहुत अधिक अनुवाद हुए। इससे सिद्ध होता है कि पाश्चात्य जगत में इनका भव्य स्वागत हुआ। कहा जा सकता है कि यदि भारतीय ज्योतिष की ध्वजा-कीर्ति आचार्य आर्यभट प्रथम (रचना-काल ४९९ ई.) के समय में फैली, वह भास्कर (११५०) के समय तक फीकी पड़ चुकी थी। आर्यभट प्रथम और भास्कर द्वितीय प्राचीन भारत के दो महान ध्रुव थे, जिनसे ही भारतीय विज्ञान की गौरवशाली परम्परा प्रारम्भ होती है और उन्हीं के साथ खत्म भी हो जाती है।

आर्यभटीय के प्रणेता आर्यभट अपनी अद्वितीय मान्यताओं के लिए जगत विख्यात हैं। लेकिन एक और महत्वपूर्ण नाम उभर कर सामने आता है—भास्कर। प्राचीन भारत में भास्कर नाम के दो विद्वान हुए। 'महाभास्करीय' और 'लघुभास्करीय' नामक ग्रन्थों के प्रणेता (रचना काल ६२९) को भास्कर प्रथम नाम से जानना चाहिए क्योंकि आगे चल कर इसी नाम के एक और ज्योतिर्विद हुए हैं (रचनाकाल ११५०) जो 'सिद्धान्त शिरोमणि' के प्रणेता के रूप में प्रसिद्ध हैं।

भास्कर प्रथम ने 'आर्यभटीय' की टीका भी लिखी थी—'आर्यभटतंत्र भाष्य'। भास्कर प्रथम आर्यभट 'स्कूल' के विद्वान थे और दक्षिण में अश्मक नामक स्थान के थे। इनके जन्म काल का स्पष्ट विवरण नहीं मिलता। महाभास्करीय की रचना पहले हुई थी और लघुभास्करीय की बाद में। दोनों में आठ-आठ अध्याय हैं। 'महाभास्करीय' में कुल ४०३ श्लोक तथा 'लघुभास्करीय' में २१४ श्लोक हैं।

इन ग्रन्थों में सूर्य-ग्रहण, चन्द्र-ग्रहण, चन्द्रमा की दृश्यता, कला और उसका उदय तथा अस्त होना, ग्रहों का योग, ग्रहों का देशांतर और ज्योतिषीय स्थिरांकों की चर्चा की गयी है।

लेकिन भास्कर प्रथम से ज्यादा ख्याति अर्जित की भास्कर द्वितीय ने। आचार्य भास्कर ने अपना जन्म स्थान खान देश (महाराष्ट्र) में सह्याद्रि पर्वत के निकट विज्जडविड ग्राम लिखा है। साथ में यह भी उल्लेख है कि ३६ वर्ष की आयु (११५०) में उन्होंने 'सिद्धांत शिरोमणि' की रचना की। वे लिखते हैं :

रसगुणपूर्णमही समशकनृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः।

रसगुणवर्षेण मया सिद्धांतशिरोमणी रचितः।

अर्थात् रस (६) गुण (३) पूर्ण (०) मही (१) यानी (अंकानाम् वामतो गतिः के अनुसार) १०३६ शक संवत् में मेरा जन्म हुआ था और रस (६) गुण (३) यानी ३६ वर्ष की आयु में मैंने 'सिद्धान्तशिरोमणि' की रचना की। इस प्रकार इनका जन्म १०३६ शक या १११४ ई. में हुआ माना जाना चाहिए।

यों 'लीलावती' के फारसी के अनुवादक 'फैजी' ने लिखा है कि 'भास्कराचार्य की जन्मभूमि दक्षिण में वेदर नामक स्थान है'। लेकिन वेदर सह्याद्रि पर्वत के निकट नहीं है, और एक बात यह भी है कि भास्कर के समय वहां चालुक्य वंश का राज्य था जिनसे भास्कर के किसी भी प्रकार के संबंध का कहीं भी उल्लेख नहीं है। इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि देवगिरि (दौलताबाद) के यादव वंशीय राजा जैत्रपाल के राज्य में भास्कर के वंशज राज ज्योतिषी थे। अतः उनका जन्मस्थान वेदर बताना अटपटा एवं भ्रामक प्रतीत होता है।

ज्योतिषी महेश्वर (जन्म लगभग १०७८) इनके पिता थे और गुरु भी। इनका पुत्र लक्ष्मीधर राजा जैत्रपाल (११९१-१२१०) की सभा में ज्योतिषी था। पौत्र जंगदेव राजा जैत्रपाल के पुत्र सिंघण चक्रवर्ती (१२१०-१२४७) का ज्योतिषी था। भास्कर की वंशावली बताती है कि इस कुल की विद्वत् परम्परा काफी आगे तक चली, लेकिन भास्कर के समान कोई पंडित नहीं हुआ। भास्कर के पांडित्य के कारण ही उन्हें भास्कराचार्य भी कहते हैं। वे उज्जैन की वेधशाला के निदेशक भी थे।

कृतित्व

भास्कर ने ३६ वर्ष की आयु में 'सिद्धान्तशिरोमणि' की रचना की तथा आगे चलकर ६९ की उम्र में (११८३) 'करण कुतुहल' नामक ग्रन्थ रचा। सिद्धान्त शिरोमणि दो भागों में विभाजित है : गणिताध्याय और गोलाध्याय। प्रसंगवश यह कहना अनुचित न होगा कि कुछ लोग लीलावती और बीजगणित को भी सिद्धान्त शिरोमणि का अंग समझते हैं, जो ठीक नहीं है। ये दोनों अलग-अलग ग्रंथ हैं। वैसे भास्कर ने यह अवश्य लिखा है कि सिद्धान्त ज्योतिष का ज्ञान तभी पूरा होता है, जब विद्यार्थी को पाटी गणित (लीलावती) और बीजगणित का पूरा ज्ञान हो।

सिद्धान्तशिरोमणि

सिद्धान्तशिरोमणि (गणिताध्याय और गोलाध्याय) ज्योतिष सिद्धान्त का उत्तम ग्रंथ है। इसमें ज्योतिष की वे सभी बातें विस्तार से वर्णित हैं, जो ब्रह्मगुप्त (६२८) कृत 'ब्राह्म स्फुट सिद्धांत' तथा आर्यभट द्वितीय (लगभग ९५०) कृत 'महा-सिद्धान्त' में दी गयी हैं।

गोलाध्याय के प्रथम अध्याय गोल-प्रशंसा में अपनी कृति के बारे में भास्कर स्वय लिखते है :

गोलं श्रोतुं यदि मतिर्भास्करीयं श्रुणुत्वं
नो संक्षिप्तो न च बहु वृथाविस्तारः शास्त्रतत्वम्।
लीलागम्यः सुललितपदः प्रश्नरम्यः स यस्माद्
विद्वन् ! विद्वत्सदसि पठतां पंडितोक्ति व्यनक्ति ।।

अर्थात् हे पडित, यदि तुम्हारी इच्छा ज्योतिष सुनने की है तो भास्कराचार्य कृत पुस्तक को सुनो। वह न तो संक्षिप्त है और न व्यर्थ विस्तृत है। उसमें शास्त्र का तत्व है। उसमें सुन्दर पद हैं और मनोरम प्रश्न हैं। वह सुगमता से समझी जा सकती है, और उसे पंडितों की सभा में सुनाने से पंडिताई प्रकट होती है।

उन मतों का जिनके अनुसार पृथ्वी किसी आधार से टिकी हुई है, खंडन करते हुए भास्कर 'भुवनकोश' नामक अध्याय में लिखते हैं कि 'पृथ्वी क्रमानुसार चन्द्र बुध, शुक्र, रवि, मंगल, वृहस्पति और नक्षत्रों की कक्षाओं से घिरी हुई है। इसका कोई आधार नहीं है, केवल अपनी शक्ति से स्थिर है।' इतना ही नहीं वे आगे लिखते हैं—

आकृष्ट शक्तिश्च मही तथा यत् स्वस्थं गुरू स्वाभिमुखं स्वशक्तया।
आकृष्यते तत् पततीव भाति समे समन्तात् क्व पतत्वियं खे ।।

(भुवनकोश, श्लोक ६)

अर्थात् 'पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है। पृथ्वी अपनी आकर्षण शक्ति के ज़ोर से सब चीज़ों को अपनी ओर खींचती है। यह अपनी शक्ति से जिसे खींचती है, वह वस्तु भूमि पर गिरती हुई सी प्रतीत होती है।

स्पष्ट है कि भास्कर द्वारा प्रतिपादित पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त न्यूटन (१६४२-१७२७) से लगभग ५०० वर्ष पहले का है।

चिरस्थायी गति यंत्र

सिद्धान्त शिरोमणि के यंत्राध्याय (प्रथम श्लोक) में भास्कर लिखते हैं— 'काल के सूक्ष्म अवयवों का ज्ञान बिना यंत्र के असंभव है। इसलिए संक्षेप में कुछ यंत्रों का वर्णन करता हूं। उन यंत्रों के नाम यों हैं—गोल, नाड़ीवलय, यष्टि, शंकु, घटी चक्र, चाप, तुर्य, फलक और धी।

यों भास्कर ने सब यंत्रों में श्रेष्ठ 'धी यंत्र' को बताया है लेकिन सबसे रोचक है स्वयं चल यंत्र की परिकल्पना। भास्कर के अनुसार इसे चिरस्थायी गति भी प्रदान की जा सकती है। यंत्र का वर्णन इस प्रकार है :

'लकड़ी का पहिया बनाकर उसमें समान दूरियों पर आरे लगाओ। आरे सीधे नहीं वरन् एक ओर झुके हुए हों और अन्दर से पोले हों। इसके एक ओर समान आकार के छेद बने हों। इन छेदों में पारा डालकर छेदों को आधा भर दो और छेदों का मुंह बन्द कर दो। फिर इस पहिये को एक धुरी पर कस दो। अंत में धुरी को पहिये समेत दो स्तम्भों के बीच स्थिर कर दो। पहिये को एक बार गति देने से पहिया सदैव घूमता रहेगा।

आधुनिक गणितज्ञों ने ऐसा यंत्र बनाने की कोशिश की है, जिसका विवरण उपर्युक्त यंत्र से मिलता-जुलता है, लेकिन अभी तक ऐसा कुछ बन नहीं पाया।

लीलावती

यह अंकगणित और महत्वमापन (क्षेत्र-फल, घनफल) का स्वतंत्र ग्रंथ है, जिसमें पूर्णांक और भिन्न, त्रैराशिक, ब्याज, व्यापार गणित, मिश्रण, श्रेणियां, क्रमचय, मापिकी और थोड़ी बीजगणित भी है। लीलावती को पाटी गणित भी कहते हैं। यह अंकगणित है। चूंकि प्राचीन काल में गणना पाटी पर धूल बिछाकर उंगली या लकड़ी से की जाती थी, अतः अंकगणित को पाटी गणित या 'धूलिकर्म' भी कहा जाता था। इसमें लगभग २७८ पद्य हैं तथा उदाहरणों का स्पष्टीकरण गद्य में है। लीलावती में लीलावती नामक एक लड़की को सम्बोधित करके प्रश्नोत्तर रूप में परिगणित, क्षेत्रमिति के प्रश्न रोचक ढंग से दिये गये हैं। मनोरंजनार्थ एक प्रश्न उद्धृत है :

अस्तिस्तंभतले बिलं तदुपरि क्रीडाशिखंडी-स्थितः
स्तंभे हस्तनवोच्छ्रिते त्रिगुणित स्तंभप्रमाणां-तरे।
दृष्ट्वाहिं बिलमाव्रजन्तमपतत्तिर्यक्स तस्योपरि
क्षिप्रंब्रूहि तयोर्बिलात्कतिमितैः साम्येन गत्ययोर्युतिः॥

अर्थात् ९ हाथ ऊंचे एक स्तम्भ पर एक मोर बैठा है। स्तंभ के नीचे एक सांप २७ हाथ की दूरी से बिल की ओर आ रहा है, उसे देखकर मोर पूर्व की दिशा में झपट पड़ा। मोर और सांप को बराबर-बराबर चलना पड़ा। बताओ कि दोनों की भेंट बिल से कितनी दूरी पर हुई?

इसका उत्तर दिया है १२ हाथ। यह प्रश्न और इसी प्रकार के तमाम प्रश्न समकोण त्रिभुजों पर आधारित हैं।

लीलावती की रचना : एक कारुणिक प्रसंग

लीलावती की रचना के साथ ही एक कारुणिक प्रसंग जुड़ा हुआ है। लीलावती भास्कर की एक मात्र संतान थी। जन्म के समय ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि लीलावती का वैवाहिक जीवन सुखी नहीं रहेगा, अतः उसका ब्याह ही न किया जाये तो ठीक है। लेकिन भास्कर ने बड़ा श्रम करके उसके विवाह का शुभ मुहूर्त निकाला। उन्होंने एक कटोरी बनायी जिसके पेंदे में एक छोटा सा छेद कर दिया।

वह कटोरी पानी से भरे बर्तन में रख देने से ठीक एक घण्टे में भरकर डूब जाती थी। अतः शुभ मुहूर्त से पूर्व भास्कर ने कटोरी को पानी भरे बर्तन में रख दिया। कुतूहल वश लीलावती ने बर्तन में झांका, जिस समय वह झांक रही थी, उसके गले के हार का एक दाना टूटकर कटोरी में गिर गया। छेद बन्द हो जाने से शुभ मुहूर्त निकल गया और लीलावती अनव्याही रह गयी। आचार्य ने सान्त्वना के लिए कहा मैं तुझे वैवाहिक जीवन का सुख तो न दे सका, किन्तु मैं तेरे नाम पर एक ऐसी पुस्तक लिखूंगा जिससे तेरा नाम अमर हो जायेगा।

आचार्य प्रवर ने लीलावती की स्मृति को अमर बनाये रखने के लिए ग्रन्थ का नाम 'लीलावती' रख दिया।

लीलावती के 'क्षेत्र व्यवहार' अध्याय में समकोण त्रिभुज (उपर्युक्त मोर वाला उदाहरण इसी पर आधारित है) त्रिभुजों और चतुर्भुजों के क्षेत्रफल पर प्रश्न दिये गये है तथा वृत्तों के क्षेत्रफल और पाई का मान, गोलों के तल और आयतन आदि भी शामिल हैं।

पाई के मान के लिए भास्कर ने निम्न लिखित श्लोक दिया है :

व्यासे भनन्दाग्नि हते विभक्ते
खबाण सूर्यैः परिधिस्तु सूक्ष्मः।
द्वाविंशति घ्ने विहृतेऽथ शैलैः
स्थूलोऽथवा स्याद्व्यवहारयोग्यः॥

अर्थात् व्यास को भ (२७) नन्द (९) अग्नि (३), यानी (अंकानाम् वामतो गतिः के अनुसार) ३९२७ से गुणा करके ख (०) बाण (५) सूर्य (१२) यानी १२५० से भाग देने से सूक्ष्म परिधि निकलती है। और २२ से गुणा करके शैल (७) से भाग देने से स्थूल अथवा व्यवहार योग्य परिधि निकलती है।

बीजगणित

इसमें लगभग २१३ पद्य और बीच-बीच में गद्य भी है। वर्णित विषय हैं—धनर्ग (धनात्मक) संख्याओं का योग, करणी संख्याओं का योग, कुट्टक (भाजक और भाज्य की प्रक्रिया); वर्ग प्रकृति, एक वर्ग समीकरण, अनेक-वर्ग समीकरण आदि।

यद्यपि अनिर्णीत समीकरण का अध्ययन आर्यभट के समय से ही आरम्भ हो गया था, लेकिन भास्कर ने उसे चरम तक पहुंचाया। कुछ इतिहासकारों ने लिखा है कि भास्कर की विधियों में डायफण्टस की छाप है। किन्तु यह बात हमेशा ध्यान में रखी जानी चाहिये कि जिस चक्रवाल विधि की खोज भास्कर ने १२ वीं शती में की, उसे ही १६ वीं शती में पाश्चात्य गणितज्ञों ने खोजा। सच पूछिये तो गलायस, आयलर, लेग्रांज ने जो चक्रीय विधि दी है वह भास्कर की विधि का बिल्कुल उल्टा रूप है।

इस सम्बन्ध में हैकेल लिखते हैं—'अनिर्णीत समीकरणों के साधन की भारतीय विधियां सर्वथा मौलिक थीं और उन पर डायफण्टस का तनिक भी प्रभाव नहीं था।'

शून्य गणित

बीजगणित के 'खषड्विधम' अध्याय में शून्य गणित पर प्रकाश डाला गया है। प्रारम्भ में भास्कर लिखते हैं—

खयोगे वियोगे धनर्णं तथैव
च्युत शून्यतस्तद्विपर्यासमेति ।।

अर्थात् शून्य को किसी राशि में जोड़ने अथवा शून्य में किसी राशि को जोड़ने अथवा शून्य को किसी राशि में से घटाने से राशि के चिन्ह में कोई परिवर्तन नहीं होता (मतलब हुआ कि धनात्मक राशि धनात्मक रहती है और ऋणात्मक राशि ऋणात्मक) । किन्तु शून्य में से किसी राशि को घटाने से राशि में चिन्ह परिवर्तन हो जाता है।

एक स्थल पर भास्कर लिखते हैं:

वेधदौ वियत्खस्य खं खेन धाते
खहारो भवेत्खेन भक्तश्च राशिः ।।

अर्थात् शून्य को किसी राशि से गुणा करने अथवा किसी राशि को शून्य से गुणा करने पर गुणनफल शून्य होता है तथा शून्य को किसी राशि से भाग देने से फल शून्य होता है। किन्तु किसी राशि को शून्य से भाग देने से फल 'खहर' अथवा 'खछेद' होताहै (वह राशि जिसका हर शून्य होता है, उसे 'खहर' या 'खछेद' कहते हैं)।

करण-कुतूहल

इसमें ग्रहों की गणना की सुगम रीति बतायी गयी है जिससे पंचांग बनाने में सहायता मिलती है। भास्कर ने स्वयं इसे ब्रह्म तुल्य कहा है। इसका नाम 'ग्रहागम कुतूहल' भी है। इसमें कुल १३९ पद्य हैं।

टीकाएं

भास्कर कृत ग्रन्थों की महत्ता इसी बात में है कि इनके कितने अधिक अनुवाद हुए हैं। स्वयं भास्कर ने सिद्धान्त शिरोमणि में गणिताध्याय और गोलाध्याय पर वासना-भाष्य लिखा है। आर्यभट के टीकाकार परमादीश्वर ने 'सिद्धान्त-दीपिका' नाम से भास्कर के ग्रन्थों की टीका की है।

अकबर के मंत्री एवं अबुलफजल के भाई फैजी (१५८७) ने लीलावती का फारसी में अनुवाद किया है। कई अंग्रेजी अनुवाद भी उपलब्ध हैं: यथा, कोलब्रुक कृत अलजेबरा विद अरिथमेटिक एण्ड मेंसुरेशन आफ दि संस्कृत आफ ब्रह्मगुप्त एंड भास्कर (लंदन, १८१७); टेलर कृत 'लीलावती' (बम्बई, १८१६)।

इसकी कई प्राचीन टीकाएं भी हैं जैसे—रामकृष्ण कृत 'गणितामृत लहरी' (१३३९); गंगाधर कृत 'गणितामृत सागरी' (१४२०); लक्ष्मीदास कृत 'चिन्तामणि' (१५००); सूर्यदास कृत 'गणितामृत कूपिका' (१५४१); गणेश दैवज्ञ कृत 'बुद्धि विलासिनी' (१५४५), धनेश्वर दैवज्ञ की 'लीलावती भूषण' और मुनीश्वरकृत 'लीलावती विवृत्ति' (१६३५), बापूदेव शास्त्री (बनारस, १८६६) तथा सुधाकर द्विवेदी (बनारस, १९१०) की टीकाएं भी अच्छी हैं।

शाहजहां के समय में अताउल्लाह रशीदी (१६३४) ने 'बीजगणित' का

अनुवाद किया था। कोलब्रुक (१८१७) तथा स्ट्रेवी (१८१३) ने बीजगणित का अंग्रेजी अनुवाद किया। प्राचीन टीकाओं में कृष्ण दैवज्ञ की 'बीजनवांकुर' (१६०२) और सूर्यदास की टीकाएं प्रसिद्ध हैं। रामकृष्ण (१६४८) का 'बीज प्रबोध'; अच्युतानन्द की 'विमला टीका' जिसके साथ जीवनाथ झा दैवज्ञ की 'सुबोधिनी टीका' (१९४७) भी है, उल्लेखनीय है। सुधाकर द्विवेदी (१९२७), आप्टे (पूना, १९३०) की आधुनिक टीकाएं भी उपलब्ध हैं।

गणिताध्याय और गोलाध्याय पर पंडित गिरिजाशंकर की संस्कृत और हिन्दी टीकाएं (लखनऊ, १९११, १९२६) काफी अच्छी हैं।

'करणकुतूहल' पर सुमति हर्ष की टीका (संपादक—माधव शास्त्री, बम्बई, १९०१) उपलब्ध है। कहीं-कहीं पर भास्कर कृत दो और ग्रन्थों, 'मुहूर्त-पटल' और 'विवाह-पटल' का भी उल्लेख है; लेकिन ये उतने प्रसिद्ध नहीं हैं। भास्कर के बाद कई गणितज्ञ हुए, लेकिन उनकी टक्कर का कोई न हुआ। तब तक विदेशियों का आगमन प्रारम्भ हो गया था। मौलिक ग्रन्थ १२ वीं शती के बाद तो कम लिखे गये।

—निदेशक विज्ञान वैचारिकी अकादमी,
३४, एलनगंज, इलाहाबाद—२११००२

□

रोमांचक सत्यकथा

कलाकार गोया ने उस रात पुनर्जन्म लिया था ?

□ अनिता जैन

१९३६ की कोई एक उमस-भरी रात। न्यूयार्क से कलाकृतियों के सृजन के अपने पुराने शौक को पूरा करने के इरादे से आयी श्रीमती वीज रूस पेरिस में काफी बोरियत महसूस कर रही थीं। उस रात उन्हें यह अफसोस निरंतर साल रहा था कि उनका पेरिस आना व्यर्थ ही साबित हुआ। उन्हें पेरिस आये एक लम्बा अंतराल हो चुका था, लेकिन वहां के कलात्मक वातावरण में भी उन्हें किसी कलाकृति के सृजन की प्रेरणा न मिली थी। न तो हाथ में ब्रश उठाने का मन करता था और न ही कोई विषय सूझता था। सोने से पहले श्रीमती वीज रूस बड़ी मायूस दुखी और क्लांत थीं।

श्रीमती वीज चाहती थीं कि उन्हें जल्द ही नींद अपने आगोश में ले ले, ताकि थकान और उदासी दूर होकर, वे सुबह एक नयी स्फूर्ति अपने आप में महसूस करें। लेकिन नींद थी कि उनसे कोसों दूर....।

बिस्तर पर लेटे-लेटे श्रीमती वीज अपने अतीत के बारे में सोचने लगीं। हालांकि नाटे कद और गहरे रंग के कारण उन्हें खूबसूरत तो नहीं कहा जा सकता था, लेकिन उन्हें लोगों को अपनी ओर सहज ही आकृष्ट कर लेने का निराला आकर्षण अवश्य ही था। इसी निराले और आकर्षक व्यक्तित्व के कारण वीज नामक हालैण्ड-वासी नवयुवक बरबस उनकी ओर खिंचता गया और जल्दी ही उनके इस गहरे प्रेम ने उन्हें विवाह-सूत्र में बांध दिया। मां ने इस प्रेम-विवाह का कोई विरोध नहीं किया।

लेकिन वीज में और श्रीमती वीज रूस में आपस में अधिक दिन नहीं बनी। इसका नतीजा जल्दी ही सामने आ गया—तलाक। हां, उन्होंने तलाक अवश्य ले लिया था लेकिन फिर भी वे खुद को श्रीमती वीज रूस ही कहती रहीं। हालैण्ड में तलाकशुदा औरत अपने जन्म का नाम ही प्रयोग करती है और अपने नाम के आगे भूतपूर्व पति का नाम-उपनाम नहीं लगाती।

एक-दो बार मां ने इस पर एतराज़ भी किया, श्रीमती रूस ने तब कहा—'मां, आपका कहना सही है, लेकिन मुझे अपना प्रचलित नाम (श्रीमती वीज रूस) ही अच्छा लगता है और मन नहीं करता कि उसमें कोई तब्दीली करूं।' और तब ही से उनका यह नामक आज भी कायम है।

इसके बाद, न्यूयार्क के अपने अकेलेपन से उबकर वे न्यूयार्क छोड़कर पेरिस आ गयीं, ताकि वहां के कलात्मक वातावरण में चित्र-सृजन के अपने पुराने शौक को पूरा करने के साथ वे आत्म-निर्भर भी बन सकें।

लेकिन अभी तक उन्होंने किसी कलाकृति का निर्माण नहीं किया था। आज की रात तो श्रीमती रूस अपने आपको बहुत हताश और मायूस अनुभव कर रही थीं। रह-रहकर वे न्यूयार्क वापस लौट जाने के इरादे कर रही थीं।

और... यही सोचते-सोचते उन्हें न जाने कब आंख लग गयी, पता नहीं चल पाया। जब श्रीमती वीज रूस दूसरी बार उठीं तो काफी ताजगी अनुभव कर रही थीं। उन्हें लगातार यह अहसास हो रहा था कि कोई अज्ञात शक्ति उन्हें बिस्तर से उठाकर उसके स्टुडियो में ले जा रही थी। वे कुछ समझ नहीं पा रहीं थीं कि यह सब क्या हो रहा है?

उसी अज्ञात शक्ति के प्रभाव से उन्होंने स्टुडियो में आकर अंधेरे में ही कागज पर ब्रश चलाना शुरू कर दिया। श्रीमती वीज रूस ने महसूस किया कि उनके हाथ बड़ी तेजी से चल रहे हैं और उन्हें अपने चित्र के बारे में कुछ भी पता नहीं। उन्होंने यह भी पाया कि मानो कोई अज्ञात शक्ति उन्हें माध्यम बनाकर अपनी मनचाही कलाकृति का सृजन कर रही है और जो कुछ घट रहा है, उस पर उनका कतई वश नहीं है।

श्रीमती वीज रूस के हाथ कुछ समय बाद खुद-ब-खुद रुक गये। शायद चित्र पूरा हो चुका था। एक अनूठी तृप्ति और संतोष की अनुभूति उन्हें उस समय हो रही थी। इसके बाद वे बगैर चित्र को देखे अपने बिस्तर पर आकर चुपचाप लेट गयीं।

सवेरे उठीं। नित्य के कामों से निवृत्त होकर उन्हें अचानक रात वाले चित्र की याद आयी तो भागकर स्टुडियो पहुंचीं। वहां 'अपने बनाये' उस चित्र को देखा तो अवाक् रह गयीं। घोर अंधेरे में, बगैर प्रेरणा के या अनुभूति के बनायी गयी वह कलाकृति किसी सुंदरी की थी। कलाकृति को देखते हुए श्रीमती वीज रूस को याद आ रहा था कि इस सुंदरी के चेहरे से मिलता-जुलता चेहरा वे किसी प्रख्यात चित्रकार की कृति में देख चुकी हैं, किंतु लाख दिमाग खपाने पर भी उनकी समझ में यह नहीं आया कि वह चित्रकार कौन था और उसके चित्र का सब्जेक्ट (विषय) क्या था?

निःसंदेह चित्र निहायत असाधारण रूप से उत्कृष्ट था और उसकी मनचाही कीमत पायी जा सकती थी। लेकिन इससे पहले वह यह जानने को आतुर थीं कि उनके द्वारा इस चित्र का 'सृजन' कैसे मुमकिन हो पाया?

संयोग से उन्हीं दिनों श्रीमती वीज रूस की मुलाकात एक ऐसी महिला से हुई, जो

किसी भी वस्तु को देखकर उसका संबंध उसके अतीत से स्थापित कर सकती थी। यह महिला प्रेतात्माओं से साक्षात्कार करने के इच्छुक लोगों के लिए माध्यम का काम भी करती थी। इस महिला ने अपनी असामान्य शक्ति के कारण कई रहस्यपूर्ण मामलों का रहस्योद्घाटन किया था। श्रीमती वीज रूस को विश्वास हो चला था कि यह महिला उस चित्र के जन्म पर प्रकाश डाल सकेगी। श्रीमती रूस की यह धारणा सच ही साबित हुई, जब उस महिला ने स्पेन के महान चित्रकार गोया की मृतात्मा से संपर्क करने के बाद इस रहस्य को सुलझा दिया। उसी के द्वारा पता चला कि श्रीमती वीज रूस के इस चित्र की सुंदरी का चेहरा गोया की एक अमर कलाकृति 'ग्वालिन' के चेहरे से मिलती-जुलती थी।

उक्त महिला ने गोया की प्रेतात्मा से बात कर, श्रीमती वीज रूस को जानकारी दी कि गोया ने (जिनकी मृत्यु १९२८ ई. में हुई थी) अपनी जिंदगी के अंतिम दिनों में अपने स्पेन स्थित शत्रुओं से सुरक्षा के लिए फ्रांस के द. भाग में स्थित आपके पति के पूर्वजों के यहां शरण ली थी। गोया उन दिनों बहुत असहाय अवस्था में थे और मरने से पहले और बाद भी उसकी यही इच्छा रही कि वह आपके पति के पूर्वजों के अहसानों का बदला चुकायें, किंतु इसके लिए गोया को कोई उपयुक्त अवसर नहीं मिला।

अब आपको कष्ट में देखकर गोया ने आपकी सहायता करने का निश्चय किया। संभव था कि चेतनावस्था में आप उनकी सहायता लेने से इंकार कर देतीं, इसीलिए उन्होंने आपको अंधेरे में चित्रकारी करने को बाध्य किया कि आपको पता न लग सके कि आप क्या कर रही हैं?

दरअसल इस कलाकृति का सृजन चित्रकार गोया ने ही किया है, आप तो केवल माध्यम रही हैं।

श्रीमती वीज रूस ने गोया का नाम तो सुना था लेकिन वे इस महान और विश्व-प्रसिद्ध कलाकार के जीवन के बारे में अधिक नहीं जानती थीं। इस महिला द्वारा प्राप्त जानकारी के बाद उन्होंने लाइब्रेरी से लेकर गोया की जीवनी पढ़ी। जब श्रीमती वीज रूस ने जीवनी में पढ़ा कि वास्तव में अपनी जिंदगी के अंतिम दिन गोया ने उनके श्वसुर श्री रोजेरियो वीज के घर बिताये थे, तो उन्हें सहज ही विश्वास हो गया कि सचमुच माध्यम ने सही स्पष्टीकरण दिया था और उस रात को गोया की मृतात्मा ने जन्म लेकर उस सुंदर कलाकृति का सृजन किया था।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण हैं जब मृतात्माओं से माध्यमों द्वारा संपर्क स्थापित किये गये हैं और उनसे ऐसी जानकारियां हासिल की गयी हैं, जिनका किसी को भी पूर्व ज्ञान नहीं था। —मनोज मार्ग,

भवानीमंडी—३२६५२०

□

ग्रेगरियन कैलेण्डर की कहानी

□

सुरेश गोडबोले

आजकल विश्व के सभी राष्ट्रों में तिथियों तथा महीनों की गणना के लिए 'ग्रेगरियन कैलेण्डर' प्रचलित है, परन्तु इसका प्रारम्भ और विकास कैसे-कैसे हुआ इसकी एक बड़ी विलक्षण और दिलचस्प कहानी है।

ईसा पूर्व ४०० वर्ष के समय जो मूल रोमन कैलेण्डर पश्चिमी राष्ट्रों में प्रचलित था उसके अनुसार वर्ष में १२ महीने तथा ३५५ दिन हुआ करते थे और नये वर्ष की शुरूआत भी किसी निश्चित दिन से नहीं होती थी। महीने के पहले दिन को 'कैलेण्डस' कहा जाता था और इसी से कैलेण्डर शब्द की उत्पत्ति हुई।

सोलर वर्ष, जो कि ३६५¼ दिन का होता है, एवं कैलेण्डर वर्ष में तालमेल रखने की दृष्टि से 'रोमन धर्म' गुरुओं द्वारा जिन्हें 'पोण्टिफ' कहा जाता था, प्रत्येक दो वर्ष के कालान्तर से एक अतिरिक्त माह जोड़ दिया जाता था। कई बार राजनीतिक या अन्य कारणों से धर्मगुरु इस कर्तव्य को ठीक से पूरा नहीं करते थे, इसलिए सन ४६ ईसा पूर्व तक रोमन कैलेण्डर सोलर वर्ष की तुलना में नब्बे दिन पिछड़ गया था।

प्रख्यात रोमन सम्राट जूलियस सीजर ने इसे सुधारने का प्रयत्न किया और ४६ ईसा पूर्व वर्ष में ९० दिन और जोड़ने का हुक्मनामा जारी किया। वह वर्ष ४४५ दिन का था। इसके पश्चात प्रत्येक कैलेण्डर वर्ष को ३६५ दिन का रखने की घोषणा की गयी। यह व्यवस्था भी की गयी कि प्रत्येक चार वर्ष के अन्तराल से कैलेण्डर वर्ष ३६६ दिन का रहेगा और उस वर्ष फरवरी के माह में एक दिन अधिक जोड़ा जायेगा। इस नवीन कैलेण्डर को 'जूलियन कैलेण्डर' कहा जाने लगा और वर्ष के पांचवें महीने का नाम जूलियस सीज़र की यादगार में 'जुलाई' रखा गया। उस समय नवीन वर्ष 'मार्च' महीने से प्रारम्भ हुआ करता था। शनैः शनैः यह कैलेण्डर यूरोप के सभी देशों में लागू किया गया।

वैसे सूर्य की एक परिक्रमा पूर्ण करने में पृथ्वी को ३६५ दिन, ५ घंटे ४८ मिनट व ४६ सेकण्ड का समय लगता है। स्पष्टतः सोलर वर्ष को पूर्ण दिवसों में विभाजित करना संभव नहीं था। इसलिए १२८ वर्ष की कालावधि में जूलियन कैलेण्डर वर्ष तथा सोलर वर्ष में लगभग एक दिन का अंतर पड़ जाता था। सोलहवीं शताब्दी

तक यह कैलेण्डर सोलर वर्ष की तुलना में १३ दिन आगे हो चुका था। इसमें सुधार करने हेतु तत्कालीन तेरहवें पोप 'ग्रगरी' ने निर्णय लिया कि ३२५ ई. में 'निकाइया' में हुई ईसाई धर्म गुरुओं की बैठक के समय ग्रहों की जो स्थिति थी उसे आधार मानकर सन १५८२ में 'जूलियन कैलेण्डर' से १० दिन कम कर दिये जायें और ५ अक्टूबर, १५८२ का दिवस १५ अक्टूबर १५८२ मान लिया जाये।

सोलर वर्ष एवं नये कैलेण्डर में और अधिक सूक्ष्म तालमेल रखने की दृष्टि से यह भी निश्चित किया गया कि प्रत्येक ४०० वर्ष की कालावधि में ३ वार लीप वर्ष न रखा जाये। यह साध्य करने के लिए ऐसी व्यवस्था की गयी कि जिस कैलेण्डर वर्ष की संख्या में अन्तिम दो शून्य होते हैं वह यदि ४०० से विभाजित की जा सकती हो, तो ही उस वर्ष को लीप वर्ष माना जाये।

इस प्रकार १६०० ई. का वर्ष लीप वर्ष था और २००० ई. का वर्ष भी लीप वर्ष होगा परन्तु १७००, १८०० व १९०० ई. के वर्ष लीप वर्ष नहीं थे।

इस नये कैलेण्डर को पोप 'ग्रेगरी' की यादगार में 'ग्रेगरियन कैलेण्डर' कहा जाने लगा और इसे सभी रोमन कैथोलिक राष्ट्रों ने मान्यता दे दी, परंतु इंग्लैण्ड में इसे सन १७५२ तक लागू नहीं किया गया। वहां तब तक पुराना 'जूलियन कैलेण्डर' ही प्रचलित था।

यह कैलेण्डर तब तक सोलर वर्ष की तुलना में लगभग ११ दिन आगे हो चुका था। उस समय की पार्लियामेण्ट के एक अधिनियम द्वारा यह घोषणा की गयी कि ३ सितम्बर १७५२ से १३ सितंबर १७५२ तक के दिन कैलेण्डर से हटा दिये जायें।

जन साधारण द्वारा इसका तीव्र विरोध किया गया। अनेक सभाएं आयोजित की गयीं और लोगों ने 'हमें हमारे ११ दिन वापस दीजिए' ऐसा आक्रोश करते हुए रास्तों पर जुलूस निकाले। अत्यधिक जनविरोध के बावजूद ३ सितम्बर १७५२ का दिवस १४ सितम्बर १७५२ माना गया और बीच के ११ दिन कैलेण्डर से लुप्त हो गये।

उसी समय इंग्लैण्ड में नवीन वर्ष कार्यप्रारम्भ २५ मार्च के बदले १ जनवरी से होने लगा। सोवियत रूस में भी सन १९१७ की महान क्रान्ति के पश्चात् ग्रेगरियन कैलेण्डर को मान्यता दी गयी और अब विश्व के सभी राष्ट्रों में यही कैलेण्डर प्रचलित है।

वर्ष ५००० ई. तक इस कैलेण्डर में किसी भी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। तब तक सोलर वर्ष एवं कैलेण्डर वर्ष में पुनः एक दिन का अन्तर पड़ेगा, लेकिन इस समस्या को सुलझाने के लिए हम आज क्यों चिंतित हों?

—एफ-५/५४, चार इमली,
भोपाल—१६ (म. प्र.)
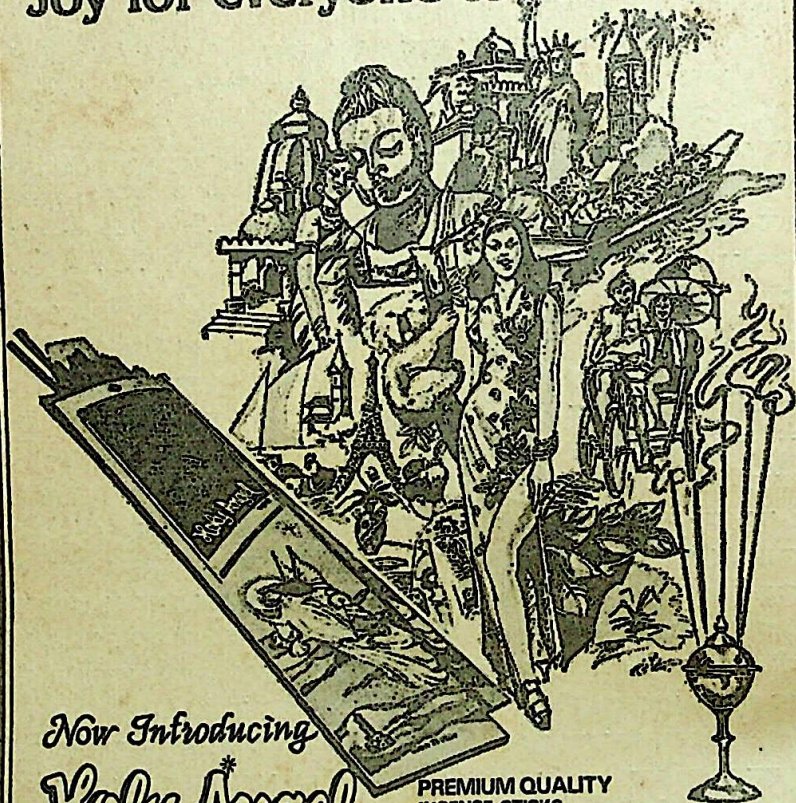
□

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः

भवन की पत्रिका 'भारती' से समन्वित

नवनीत

मनुष्य के नवोत्थान का सूचक;
जीवन, साहित्य और संस्कृति का मासिक

प्रार्थना

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यामा व्यथिष्महि भूम्याम् ॥ २८ ॥
(अथर्व पृ. मू. १२-१-२८)

एक राष्ट्र है,
धरा हमारी—
मुक्त विहग वन
हम इसके जन
डोल रहे हर्षित—
वन-उपवन
भू के प्रांगण—
व्योम विहारी

चाल हमारी
कभी बैठते—
उठते चलकर
निर्झर झर-झर—
गति चपला सी
प्यारी-प्यारी
निष्कंटक है
भूमि सुखारी—
[रूपांतर : डा. छैलबिहारी गुप्त]

गणतंत्र - दिवस के अवसर पर :

भारत में भारतीय कोई नहीं है

□ आर. आर. दिवाकर

०००

भारत एक भौगोलिक अवस्था, राजनीतिक हस्ती, प्रशासकीय ईकाई, और एक एकीकृत आर्थिक तथा वित्तीय अवस्था है। लेकिन, भारत को एक राष्ट्र कहने की बात अवास्तविक, और एक सपना मात्र है। खालिस्तान बनने की संभावना का सदमा क्या आखरी चेतावनी सिद्ध होगा ?

०००

हमें यह भ्रम है कि हम एक राष्ट्र बन चुके हैं। वास्तव में, ऐसा है नहीं। इस भ्रम के कारण हम कष्ट पा रहे हैं। इस निर्मम स्थिति की वास्तविकता हम पाकिस्तान बनने के सदमे में भी नहीं समझ सके। पाकिस्तान बनने जा ही रहा था कि कुछ तमिलों द्वारा द्रविड़िस्तान बनाने के प्रयासों का जिन्ना ने तार भेज-कर अभिनंदन किया था। जिसे हम भारत कहते हैं, उसे तथा देशी राज्यों के बीच भारत को अविभाजित रखने के गंभीर प्रयास हुए। लेकिन, ये सब चेतावनियां व्यर्थ रहीं। हम सरदार पटेल द्वारा देशी राज्यों के भारत में विलीनीकरण के नशे में चूर थे। प्राप्त लाभों को सुगठित करने तथा राष्ट्र की एकता सुदृढ़ बनाने की दिशा में हमने कुछ नहीं किया। खालिस्तान बनने की मांग का सदमा क्या हमारे लिए आखरी चेतावनी सिद्ध होगा ?

भारत एक भौगोलिक अवस्था, राज-नीतिक हस्ती, प्रशासकीय ईकाई, और एक एकीकृत आर्थिक तथा वित्तीय अवस्था है। लेकिन, भारत को एक राष्ट्र कहने की बात अवास्तविक, और एक सपना मात्र है। खालिस्तान बनने की मांग का सदमा हमारे लिए वैसा ही है, जैसा पाकि-स्तान बनने का सदमा था। पाकिस्तान ने यह सिद्ध कर दिया कि हम एक राष्ट्र नहीं हैं, और खालिस्तान और द्रविड़िस्तान की मांगों ने इस पर एक मुहर सी लगा दी है।

भारतीय कौन है ?

भारत में भारतीय कोई नहीं है। कोई मराठा है, कोई गुजराती है, कोई कन्नड़-भाषी, कोई तेलुगुभाषी और कोई तमिल-भाषी। ऐसा क्यों है ? हमारी इस असफ-लता का, इस स्थिति का क्या कारण है ?

इसका कारण यह है कि हमने अपने

महान संविधान का अनुसरण नहीं किया है। इस संविधान को हम भारतवासियों ने स्वयं के लिए बनाया था, और अपनी आकांक्षाओं को हमने उसकी भावपूर्ण प्रस्तावना में गुंफित किया था। लेकिन, हम यह भूल गये हैं कि यद्यपि हम राष्ट्रीय हस्ती में तो जी रहे हैं, लेकिन एक महान, अभिजात राष्ट्र बनने का हमारा सपना अभी पूरा नहीं हुआ है।

अपने संविधान के कारण ही हम भारत राष्ट्र के नागरिक हैं। इस संविधान के कारण ही, हम विदेशों में भी भारत के नागरिक के रूप में जाने जाते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि यह अहसास, यह अनुभूति पूर्णरूप से भारत के हर नागरिक के मन में परंपरा, संचार-प्रकाशन के हर माध्यम द्वारा तथा उसके हर कार्य में परिलक्षित होनी चाहिये।

भारत का हर नागरिक केवल एक मतदाता ही नहीं है। राष्ट्र के संविधान में जिस नागरिक स्वातंत्र्य और मूलभूत अधिकारों का उल्लेख है, वह उनका जन्मजात रक्षणकर्त्ता है, तथा भारत के भविष्य का निर्माता भी। और चूंकि उसके कंधों पर यह बड़ी जिम्मेदारी है, इसलिए उसे सदा सतर्क रहना चाहिये कि देश के अंदर और बाहर क्या हो रहा है। उसे अपनी आंखें सदा खुली रखनी चाहिये।

यदि भारत का हर नागरिक ऐसी सतर्कता बरतता, तो कुछ सिरफिरे लोगों द्वारा संविधान की प्रतियों के जलाये जाने की नौबत न आती। यदि गीता, कुरान, बाइबिल की प्रतियां जलायी जातीं, तो क्या होता? चारों तरफ आग लग जाती। क्या संविधान भारत जैसे स्वतंत्र और जागृत राष्ट्र की इच्छाओं और आकांक्षाओं से पूरित देश के नागरिकों का बाइबिल नहीं है?

राष्ट्र के प्रति निष्ठा

प्रत्येक भारतीय को संविधान की प्रस्तावना में छिपे सपनों को साकार करने के लिए जाग्रत और संगठित होना होगा। हमारी अर्थ-व्यवस्था, हमारा सुखी जीवन, हमारा धर्म, हमारा भविष्य, संविधान को मानने तथा उसे कार्यान्वित करने पर ही अवलंबित है। यदि हम संविधान को अपने हिंसात्मक वचनों और कार्यों से अपवित्र कर देंगे, उसकी अवज्ञा करेंगे, तो राष्ट्र में व्यवस्थित जीवन कैसे फलफूल सकेगा?

हर इंसान सबसे पहले एक इंसान (मानव) है। लेकिन, उसका एक इंसान बने रहना, तथा अपना सामान्य जीवन जीना, संविधान के तथा उसमें अभिप्रेत सिद्धांतों के पालन पर निर्भर करता है। इसलिए, आवश्यक है कि हम भारत के नागरिक स्थिति को ठीक से समझ लें, एक होकर रहें, और इस बात का ध्यान रखें कि हमारा राष्ट्र हमारे संविधान की प्रस्तावना में उल्लिखित सिद्धांतों के अनुसार ही विकसित हो। यदि राष्ट्र के टुकड़े-टुकड़े हो गये, तो कौन सुरक्षित रह सकेगा?

□

आधुनिक बंगला कविता के प्रवर्तक विष्णु दे

□ हरि

श्री विष्णु दे, जिनका निधन पिछले वर्ष हुआ, उन प्रख्यात बांगला कवियों में से थे, जिन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जीवन-काल में ही, बांगला कविता को रवि बाबू के प्रभाव से मुक्त करके, उसे एक नूतन सामर्थ्य और समृद्धि प्रदान की। स्वयं रवि बाबू उनकी कविता के, जो उनके अंतस के नयेपन को प्रदर्शित करने वाला वातायन थी, एक प्रशंसक थे। उनकी निराली काव्य-साधना तथा अविस्मरणीय व्यक्तित्व का संक्षिप्त परिचय।

०००

सन १९७१ के ज्ञानपीठ-पुरस्कार-विजेता श्री विष्णु दे के निधन से बांगला कविता के एक घटनापूर्ण युग का अंत हो गया।

अन्य विशेषताओं के साथ, विष्णु दे की एक उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि अपनी पीढ़ी के सर्वाधिक आयु वाले कवि (जन्म: १९०९; निधन: १९८२) होने के बावजूद, वे इस पीढ़ी के सबसे आधुनिक कवि भी थे।

इस सदी के तीसरे दशक के आरंभ के काल को दे के काव्यजगत में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, क्योंकि इसी काल में, उनकी कविता नवीन रूप धारण कर, सामने आयी। चेतना के नये-नये आयामों को खोलने वाली, और सार्थक जीवन-मूल्यों को प्रतिष्ठित करने वाली, दे की इस नयी कविता में, वह कटुता एवं बर्बरता भी बड़े जीते-जागते तथा चुभते हुए ढंग से उभरी, जो अंग्रेज शासकों द्वारा भारतीयों पर बरती जा रही थी। इस काल की उनकी कविताओं को पढ़कर, पाठकों की आंखों के सामने, उस काल का जन-जीवन तथा उसकी समस्याएं, व्यापक रूप से उपस्थित हो जाती हैं।

बाद में, द्वितीय महायुद्ध से पूर्व, दे ने अपनी ओजपूर्ण कविताओं द्वारा हिंसा के उत्सव में उन्मत्त, एवं विषैले दांतों वाले, निष्ठुर फासिज्म के खतरे के प्रति लोगों को सावधान किया।

काव्य-साधना

१९०९ में अटर्नी जनरल अविनाश चन्द्र के पुत्र के रूप में जन्मे विष्णु दे ने युवावस्था में ही कविताएं लिखना आरंभ कर दिया था। उनका प्रथम काव्य-संग्रह 'उर्वशी-ओ-अर्तिनिस' १९३३ में प्रकाशित हुआ था। इससे पूर्व, १९३२ में वे अपने कॉलेज से अंग्रेजी का स्वर्णपदक

प्राप्त कर चुके थे। सन १९३५ में उनके अध्यापन-जीवन का सूत्रपात हुआ, जो १९६९ तक चला।

साहित्य के प्रति उनकी रुचि तभी जाग्रत हो गयी थी, जब वे विद्यार्थी थे। विद्यार्थी-काल में ही वे 'परिचय' नाम की साहित्यिक पत्रिका से जुड़े साहित्यकारों से परिचित हो गये थे। उस काल के अधिकांश बांगला कवि रवीन्द्रनाथ से बेहद प्रभावित थे। प्रभावित तो विष्णु दे भी थे जो स्वीकार करते हैं कि 'रवीन्द्रनाथ के संपर्क में आकर ही मुझे अपनी प्रतिभा के सामर्थ्य का पता चला, लेकिन इसी संपर्क ने मुझे उनकी लीक से हटने की प्रबल आकांक्षा भी दी,' लेकिन प्रेमेन्द्र मित्र, बुद्धदेव बसु, जीवनानंद दास तथा सुधीन्द्रनाथ के साथ, उन्होंने अपने को इस प्रभाव से मुक्त कर, एक नयी काव्य-परम्परा को जन्म दिया। उनके दर्जनों काव्य-संग्रहों में 'स्मृति, सत्ता, भविष्यत्', 'पूर्वलेख', 'सातभाई चंपा', 'अन्विष्ट', 'संदीपेर घर' तथा 'चौरावालि' अधिक विख्यात हैं।

१९६५ में साहित्य अकादमी पुरस्कार जीतने वाले विष्णु दे को, १९७१ में ज्ञानपीठ पुरस्कार जीतने का सम्मान प्राप्त हुआ, १९६३ में प्रकाशित आपके काव्य-संग्रह 'स्मृति, सत्ता, भविष्यत्' के लिए। इसे १९६० से १९६४ तक के बीच में प्रकाशित भारतीय भाषाओं के सृजनात्मक साहित्य में सर्वश्रेष्ठ कृति माना गया।
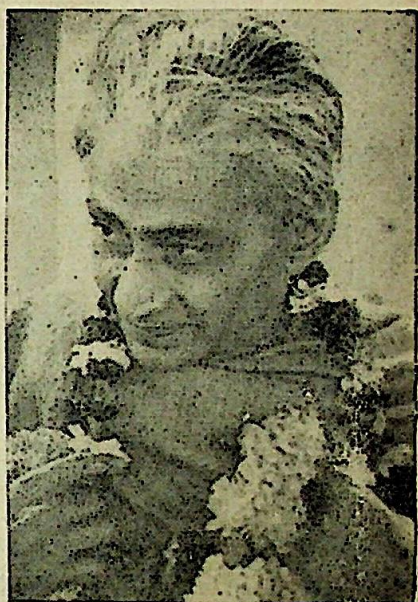
विष्णु दे

अभिजात-वर्ग में जन्म लेकर, निरन्तर काव्य-साधना करते हुए भी विष्णु दे ने अपने को एक 'नार्मल' मानव, और एक समाजाश्रयी नागरिक बनाये रखने की पूरी चेष्टा की। वे 'सर्वहारा' के कवि थे और उनकी कविता 'विशुद्ध कवि' के एकांगी और सम्पूर्ण अनुभव में कभी संकीर्ण या कुंठित नहीं हुई। किन्तु वे सर्वहारा के संघर्षमय जीवन से द्रष्टा के रूप में ही नहीं, कर्त्ता के रूप में भी जुड़े थे। कर्त्ता के रूप में उन्होंने आम आदमी की जीवन-सरिता के अनेक तटों को छूकर, विविध

अनुभव प्राप्त किये।

प्रख्यात साम्यवादी नेता, श्री हीरेन मुकर्जी ने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि 'यदि 'स्मृति, सत्ता, भविष्यत्' का अंग्रेजी में अनुवाद हो जाये, तो इसकी गणना समकालीन काव्य-साहित्य की श्रेष्ठतम कृतियों में होने लगे।' . . . दे की उस संघर्ष में गहरी रुचि थी, जो आज के मजदूर ने पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध छेड़ रखा है। उनकी कविता की जड़ों को ऐसे ही लोगों की ज़िंदगियों में देखा जा सकता है। आम आदमी की ज़िंदगी से इसी लगाव के परिणामस्वरूप, वे कम्यूनिस्ट पार्टी से वावस्ता हुए। वे प्रगतिशील लेखक संघ से भी संबद्ध थे, और इसी संघ के माध्यम से वे मुल्कराज आनंद, सज्जाद ज़हीर, ख्वाजा अहमद अब्बास और अली सरदार जाफ़री जैसे ख्यातनामा वामपंथी साहित्यकारों के मित्र बने। इस संघ के अतिरिक्त वे 'इंडियन पीपुल्स थियेटर एसोसियेशन', 'फ्रेंड्स ऑफ द सोवियत यूनियन', 'एण्टी-फासिस्ट राइटर्स एण्ड आर्टिस्ट्स एसोसियेशन' से भी जुड़े थे। जब वे राजधानी में ज्ञानपीठ पुरस्कार लेने आये, तो उन्होंने पुरस्कार-समारोह में संक्षिप्त-सा ही भाषण दिया था, लेकिन कम्यूनिस्ट पार्टी द्वारा आयोजित स्वागत-समारोह में वे अधिक प्रसन्न एवं उत्साही दिखायी दिये।

संघर्षमय जीवन

१९४३ में जब भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी की पहली कांग्रेस बम्बई में हुई थी, तब उन्होंने बड़े चाव से उसमें भाग लिया था। उस समय वे हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, शांति वर्धन आदि के संपर्क में आये थे। उन दिनों कम्यूनिस्ट पार्टी दो मोर्चों पर संघर्ष कर रही थी, स्वातंत्र्य-संघर्ष के मोर्चे पर, और देश में साम्यवाद लाने के संघर्ष के मोर्चे पर। विष्णु दे अपनी लेखनी सहित दोनों मोर्चों पर सक्रिय थे।

उनके साम्यवादी विचारों के कारण, साहित्य अकादमी के सर्वेसर्वा काफ़ी दिनों तक उन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार देने से हिचकते रहे, लेकिन, आखिर, अकादमी कहां तक और कब तक उन्हें इस श्रेय से वंचित रख सकती थी? उनकी मेधा-जन्य सामर्थ्य तथा अध्ययन-प्रसूत समृद्धि के आगे उन्हें झुकना ही पड़ा। बाद में, लेनिन, सोवियत रूस, तथा मार्क्सवादी विचारधारा पर अपनी मौलिक कविताओं तथा रूसी कविताओं के बंगाली अनुवाद पर उन्हें 'सोवियत लैण्ड पुरस्कार' भी मिला, लेकिन अस्वस्थता के कारण वे रूस की यात्रा नहीं कर पाये।

संपन्न वातावरण में जन्मे विष्णु दे ने जानबूझकर बिहार के एक गांव रिखिया को अपना 'दूसरा घर' बनाया, ताकि वे देश के निर्धन व्यक्तियों की रोज़मर्रा की ज़िंदगी से भली भांति परिचित हो सकें। वस्तुतः, उनके बाद के संस्कार तथा व्यक्तिगत एवं सामाजिक अनुभव उसके बिल्कुल विपरीत रहे हैं। अपनी सृजनशीलता को,

जिसकी शुरुआत बहुत कम आयु में ही हो गयी थी, उन्होंने निर्धनता और असहायता के विरुद्ध अनवरत संघर्ष का साधन माना।

अतः, न सिर्फ़ उनकी दृष्टि व्यापक रही, बल्कि काल और परिस्थिति के अनुसार, उनका सामाजिक व्यवहार भी विविध गुणसंपन्न रहा है। ऐसा व्यवहार बरतने के लिए उन्हें विशेष प्रयास करने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी, और बड़ी सरलता से वे किसी भी समाज में घुलमिल जाते थे।

इसी कारण, उन्होंने इस वर्ग की समस्याओं को अपनी कविताओं में बड़ी स्वाभाविकता के साथ छंदोबद्ध किया है। उन्हें पढ़कर, मालूम पड़ जाता है कि उनकी मनोदशाओं से दे का पुराना नाता है।

टैगोर के अलावा, टी. एस. इलियट और पाब्लो नेरूदा भी उनके प्रिय कवि थे, और इन तीनों प्रमुख कवियों की कविताओं से उन्होंने अपनी रुचि का परिष्कार किया, भावोन्मेष को नियंत्रित किया, और उसमें समता और सहिष्णुता का समावेश किया।

मार्क्सवाद की ओर उनकी रुझान उनके काव्य-संग्रह 'पूर्वलेख' (१९४१) के बाद हुई थी। 'पूर्वलेख' के प्रकाशन के बाद, वे अग्रणी बांगला कवियों की श्रेणी में प्रतिष्ठित हुए, लेकिन उसके साथ ही, उनके सोच में एक मूलभूत तथा क्रांतिकारी परिवर्तन भी दिखायी दिया।

दे के पाठक उनकी आदर्शोन्मुखी कविता से तो अनुप्राणित होते ही थे, उनके शिष्ट और मैत्रीपूर्ण व्यवहार पर भी बेमोल बिक जाते थे। उनके स्वप्नों की रूपरेखाएं ही उनका काव्य थीं, और उन्हीं में उनकी उमंग और कल्पना प्रस्फुटित होती थी।

उनके परिचित उनकी उस तापशील सहिष्णुता से भी भली भांति परिचित थे, जो उनके निजी जीवन को समतल करती रहती थी, और उनके जन्मजात संस्कारों को लांघनेवाले महत शील से प्रवाहित होती थी।

विष्णु दे की संगीत और चित्रकला में भी गहरी रुचि थी। यामिनी राय के लोक-चित्रों के वे प्रशंसक थे।

वे सच्चे अर्थों में जनवादी कवि थे, और उन्होंने आम आदमी की मानसिकता को अपनी कविताओं में व्यक्त किया है। वे आम आदमी की आर्थिक दशा में सुधार करके, सन्तोष मानने वाले प्राणी नहीं थे, वे उसके जीवन को सच्चे अर्थों में संपन्न एवं आनंदमय बनाने के अभिलाषी थे। उनके कवि-कर्म का प्रधान उद्देश्य यही था।

उन्हें जो अपार यश मिला, उसके प्रति उन्हें विस्मय के साथ सदा संकोच भी अनुभव होता रहा। लेकिन, उनकी प्रतिभा कभी बलहीन सिद्ध नहीं हुई, और वे अंत तक अपनी कविताओं से पाठकों की आकांक्षाओं की पूर्ति करते रहे।

□

मकर संक्रान्ति का माहात्म्य

□

माइल्स डेविस

अमरीका-वासी माइल्स डेविस (पतितपावन दास), पी-एच. डी. की हिन्दू धर्म में गहरी आस्था है। उन्होंने हाल ही में अमरीका से 'जर्नल ऑफ इन्डोलॉजी' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया है। स्वयं उन्हीं के द्वारा लिखा गया यह लेख इस पत्रिका के प्रवेशांक से, उनकी अनुमति से, साभार यहां उद्धृत किया जा रहा है।

मकर संक्रांति हिन्दुओं का एक प्रमुख त्योहार है, जो भारत के अलावा उन सभी देशों में भी बड़े उत्साह से मनाया जाता है, जहां हिन्दू रहते हैं। 'संक्रांति' शब्द के शाब्दिक अर्थ हैं—सूर्य या किसी ग्रह का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करना। मकर बारह राशियों में से दसवीं राशि है। मकर-संक्रांति, अर्थात् माघ मास की संक्रांति, जिस दिन सूर्य उत्तरायण होता है।

पश्चिम के ज्योतिष बकरी को मकर राशि का प्रतीक मानते हैं। लेकिन, हिन्दू ऋषियों ने, जो वेदांग ज्योतिष के जन्मदाता थे, घड़ियाल को मकर राशि का प्रतीक माना है। अनेक वैदिक ज्योतिषियों ने मकर राशि का प्रतीक एक ऐसे घड़ियाल को माना है, जिसका सिर एक हिरण जैसा हो।

हिन्दुओं ने मकर (घड़ियाल) को एक पवित्र पशु माना है। गीता में कृष्ण कहते हैं, 'जलजीवों में मैं मकर हूं।'

मकर संक्रांति का ऊपरी महत्त्व तो यही है कि उस दिन सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है। हर वर्ष की १४ जनवरी से भगवान सूर्यनारायण की छह महीने की उत्तरी गोलार्द्ध की यात्रा आरंभ होती है। हिन्दू इस यात्रा को अत्यन्त शुभ मानते हैं, क्योंकि वे उत्तरी गोलार्द्ध को देवताओं का क्षेत्र मानते हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध को, जो सूर्य के कर्क राशि में प्रवेश करने के काल से लेकर उसके धनु राशि से बाहर आने के काल तक की उसकी यात्रा का क्षेत्र है, पितरों का क्षेत्र माना जाता है। इस अवधि में सूर्य पितृरायण होता है।

भगवान कृष्ण ने गीता के आठवें अध्याय में उत्तरायण के जिस महत्त्व का वर्णन किया है, उसी की पुष्टि छांदोग्योपनिषद् में भी की गयी है। भगवान कृष्ण अपने परम शिष्य अर्जुन से कहते हैं :

'हे, भरतश्रेष्ठ ! अब मैं तुम्हें समझाता

हूं कि वे कौन-कौन से काल हैं, जिनमें प्राण त्यागने पर मनुष्य को पुन: जन्म नहीं लेना पड़ता, या लेना पड़ सकता है। जिन्हें ब्रह्म (चरम सत्य) का बोध हो गया है, वे अग्नि देवता के प्रभाव से उस काल में किसी शुभ मुहूर्त में, जब छह महीनों में सूर्य उत्तरायण होता है, इस पृथ्वीरूपी मृत्युलोक का परित्याग करते हैं। वे दिन के प्रकाश में अपना शरीर छोड़ते हैं। जो योगी रात के अंधेरे में, जब सूर्य दक्षिणायण होता है, अपनी देह का त्याग करता है, वह चन्द्रलोक में जाकर पुन: जन्म लेता है। वेदशास्त्रों के अनुसार, प्रकाश में अपना शरीर छोड़ने वाला व्यक्ति पुन: जन्म नहीं लेता, जबकि अंधकार में मृत्यु को प्राप्त होने वाले को पुन: जन्म लेना ही पड़ता है। जो योगी योग-युक्त होकर जीवन व्यतीत करते हैं, वे जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाते हैं।' (गीता २३-२७)

भीष्म द्वारा मकर संक्रांति के दिन देहत्याग

श्रीमद्भागवत् महापुराण (१-९-२९) में पितामह भीष्मदेव का उदाहरण देकर बताया गया है कि किस प्रकार सारा शरीर बाणों से बिंध जाने पर भी उन्होंने अपना प्राण त्याग करने के लिए मकर संक्रांति के लिए दो सप्ताहों की प्रतीक्षा करना उचित समझा था। उनके पिता शांतनु ने उन्हें वरदान दिया था कि वे इच्छानुसार अपने प्राण त्याग कर सकेंगे। भीष्म पितामह ने महाभारत के युद्ध में इतने अधिक भीषण घाव सहे थे कि उनमें से एक घाव भी एक औसत युवक का प्राण लेने के लिए काफ़ी होता, लेकिन अपने दृढ़ संकल्प तथा यौगिक विधियों की सहायता से उन्होंने अपने को मकर संक्रांति के दिन तक जीवित रखा।

गीता में कहा गया है, 'जब भीष्मदेव श्रोताओं को धर्म के बारे में बता रहे थे, तब एक समय ऐसा आया, जब सूर्य उत्तरायण होने लगा। इच्छानुसार अपने शरीर का परित्याग करने वाले योगी इस शुभावसर पर, अपनी इस इच्छा की पूर्ति करते हैं अर्थात् शरीर का परित्याग करते हैं। (ताकि वे जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो सकें)। वह समय आते ही, वह महामानव जिसने अपने जीवन में अनेक अर्थपूर्ण उपदेश दिये थे, सहस्रों युद्धों में भाग लिया था, और सहस्रों व्यक्तियों की प्राण-रक्षा की थी सहसा चुप हो गये; उन्होंने अपने मन को विचार-शून्य कर, सारा ध्यान ब्रह्म पर केंद्रित कर दिया, और अंतत: सब बंधनों से मुक्त हो गये। उन्होंने अपनी खुली आंखें अपने सामने खड़े भगवान श्रीकृष्ण पर केन्द्रित कर दीं, जो उन्हें पीतवस्त्रधारी चतुर्भुज के रूप में दिखायी दे रहे थे। इन्हें देखते ही देखते वे सारे मानसिक, शारीरिक कष्टों से मुक्त हो गये। उनकी सब ज्ञानेन्द्रियों ने काम करना बंद कर दिया, और परम ब्रह्म की आराधना करते हुए उन्होंने अपने प्राण त्यागे।' (श्रीमद्भागवत १-९-२९-३१)

अमरत्व के तीन गुणों और लक्षणों को, जो इस पार्थिव जगत् के गुणों और लक्षणों से सर्वथा भिन्न हैं, (कारण उनसे प्राप्त होने वाले सुख क्षणिक हैं, तथा अज्ञान और दुख को बढ़ावा देते हैं), प्राप्त करके कोई भी दिव्यानुभूति कर सकता है। इस दुखपूर्ण तथा क्षणभंगुर जगत से अपना नाता तोड़ लेने वाले व्यक्ति ही भगवान श्रीकृष्ण के प्रेम-लोक में प्रवेश पा सकते हैं, तथा श्री मदनमोहन के समान ज्योति-स्वरूप होकर, उसके, जिसने सारी सृष्टि की है, तेज द्वारा प्रकाशित होते हैं।

गीता में भौतिकवादी व्यक्ति की भ्रमित बुद्धि की समता हवा के एक ऐसे झोंके से की गयी है, जिसमें तरह-तरह की खुशबुएं व्याप्त हैं। कभी उसमें से गुलाब के फूलों की सुगंध आती है, और कभी कूड़े के ढेर की बदबू। इसी प्रकार प्राण त्याग करते समय व्यक्ति के जैसे विचार होते हैं, उन्हीं के अनुरूप उसे नया जन्म मिलता है। और जन्म-मरण का यह अंतहीन चक्र तब तक चलता रहता है, जब तक वह व्यक्ति अपना पूरा ध्यान भगवान श्रीकृष्ण के चरणकमलों में न लगा ले। कारण भगवान श्रीकृष्ण के प्रति मनसा-वाचा-कर्मणा समर्पित हो जाने वाला व्यक्ति ही जन्म-मरण के इस दुष्चक्र से मुक्ति पा सकता है।

इस संबंध में हम भीष्मदेव के जीवन और स्वेच्छा से प्राप्त किये गये अंत से बहुत कुछ सीख सकते हैं। और, जो सबसे अच्छा पाठ हम उनके जीवन से सीख सकते हैं, वह यह है कि प्रत्येक प्राणी में, भले ही वह कितना भी क्षुद्र और नगण्य क्यों न हो, परमात्मा मौजूद है। मगर जब वह दुष्कर्म करने लगता है, तो परमात्मा को भूल जाने के कारण, उसे प्राण त्याग करते समय बड़ा कष्ट होता है। उसका जीवात्मा मर्मभेदी यंत्रणा से व्याकुल होकर शरीर से बाहर निकलता है। मृत्यु के समय उसे जैसा कष्ट होता है, वैसा ही अगले जन्म में, गर्भ से बाहर निकलते समय होता है। और इस प्रकार वह जीवात्मा बार-बार जन्म लेता और मरता है, क्योंकि शरीर त्याग देने पर भी जीवात्मा, पिछले जन्म के शरीर द्वारा किये गये कर्मों को वह नहीं त्याग सकता। लेकिन, जो गीता के उपदेशों का पालन करते हुए, स्थूल और सूक्ष्म शरीर का अभिमान त्यागकर, चिन्ता-शून्य होकर ब्रह्म में लीन हो जाते हैं, वे संसार तथा जीवन-मरण के बंधन से छुटकारा पा लेते हैं। सुख-दुख को अनित्य, शरीर को पवित्र वस्तुओं का संग्रह, मृत्यु को कर्म का फल और सुख को दुख समझते हैं, वे ही संसार-सागर से प्राप्त हो सकते हैं। उन्हें ही उस शाश्वत, अव्यय, परम-पुरुष का ज्ञान हो सकता है।

मकर संक्रांति कहां-कहां मनायी जाती है?

पश्चिम बंगाल का गंगासागर द्वीप एक ऐसा स्थान है, जहां मकर संक्राति का त्योहार बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। यह द्वीप उस स्थल पर स्थित है, जहां

गंगा सागर से मिलती है; इसी कारण उसका यह नाम पड़ा है। ऐसी किंवदंती है कि भगवान कृष्ण के बड़े भाई बलराम स्वयं यहां एक बार स्नान करने आये थे।

भागवत पुराण में गंगासागर के जन्म की कथा वर्णित है। इस कथा के अनुसार, राजा भगीरथ गंगा को पृथ्वी पर इस लिए लाये थे कि वह उनके पितरों की, जो राजा सगर के पुत्र थे, भस्म पर बहें। ये पितर कपिल मुनि के शाप के कारण भस्म में परिवर्तित हो गये थे। जब गंगा देवी राजा भगीरथ के रथ का पीछा करते हुए उस श्मशान को ढूंढने का प्रयास कर रही थीं, तब उसका ठीक पता न मिलने पर उन्होंने स्वयं को अनेक धाराओं में विभाजित कर लिया, और एक साथ अनेक स्थान पर बहने लगीं, ताकि वह निश्चितरूप से उस अज्ञात श्मशान पर पहुंचकर, राजा भगीरथ के पितरों को मुक्ति दिला सकें।

मकर संक्रांति के दिन, प्रति वर्ष गंगासागर पर एक विशाल मेला लगता है, जिसमें लाखों व्यक्ति भाग लेते हैं। उस स्थान पर, जहां राजा भगीरथ के ६०,००० के करीब पितरों को जलाया गया था, आज एक विशाल मंदिर प्रतिष्ठित है। यह मंदिर कपिल मुनि को, समर्पित है।

एक सदी पूर्व तक, गंगासागर की यात्रा करना एक खतरनाक काम मोल लेना था। ठग और लुटेरे लोग इस क्षेत्र में निर्द्वन्द्व घूमते रहते थे, और वहां आने वाले यात्रियों को लूटकर, उन्हें जान से मार डालते थे।

आज कलकत्ता से गंगासागर तक पहुंचने में क़रीब तीन घंटे लगते हैं, और यह यात्रा रेल या नाव से की जा सकती है। मकर संक्रांति के अवसर पर यहां जो मेला लगता है, उसमें देश भर के साधु बड़े उत्साह से भाग लेते हैं, क्योंकि उनका विश्वास है गंगासागर में भारत के अनेक प्रमुख तीर्थों का सार-तत्त्व मौजूद है। इन साधुओं के अतिरिक्त, देश भर की धर्मप्राण हिंदू जनता की मान्यता है कि जो भक्त १४ जनवरी, मकर संक्रांति के दिन गंगासागर द्वीप के मेले में भाग लेता है, और भगवान कपिल देव की आराधना करता है, वह सब तीर्थों के देवताओं के आशीर्वाद प्राप्त करने में सफल हो जाता है।

केरल में मकर संक्रांति

केरल राज्य के वनों में स्थित भगवान अयप्पा का प्रख्यात मंदिर भी मकर संक्रांति के दिन हज़ारों भक्तों की आराधना का केन्द्र बन जाता है। अयप्पा भगवान शिव के पुत्र थे, और उनका यह मंदिर घने वनों में एक ऐसे स्थल पर स्थित है। भक्तों का कहना है कि मगर संक्रांति के दिन, कुछ सेकंडों के लिए, मंदिर के निकट स्थित पहाड़ियों पर से आग की लपटें उठती दिखायी पड़ती हैं। अनेक विश्वसनीय मित्रों ने इस चमत्कार की पुष्टि की है।

मकर संक्रांति का त्योहार भारत की पवित्र नदियों के तटों पर बड़े उत्साह और हर्ष के साथ मनाया जाता है।

□

स्वामी प्राणनाथ की समन्वय साधना

□

डा. मकबूल अहमद

जगत् में शक्त्यणु अर्थात् चिद्विन्दु विद्यमान है, कतिपय शक्त्यणु जाग्रत हैं, इनकी सख्या एवं क्रम अनन्त है। बहुशः अनन्त क्रम जगत् के मूल में निहित हैं। जगत् का अध्यात्म तत्व ही शाश्वत सर्वज्ञ आत्म चैतन्य है। जगत् में धर्मसाधना अमरत्व का मूल स्रोत है। समय-समय पर स्फूर्तिदायक मौलिक विचार, चिन्तन स्वरूप जीवन की जाज्वल्यमान एवं निःश्रेयस प्राप्ति निमित्त, सन्त वाणी द्वारा प्राप्त होते रहे। यह क्रम आदि काल से प्रचलित है तथा अन्त तक स्यात् रहेगा कारण कि जीवन में दुख से परिवेष्टित, मानव उद्धार के लिए तथा मानव इहलौकिक जीवन में उदासीन न हो वल्कि पारिलौकिक निःश्रेयस निमित्त चित्त शुद्धि, मानसिक शांति हेतु जागरूक रहे। वस्तुतः जगत् के आद्य रूप से ही आवश्यकता के अनुरूप अवतार होते रहे। ब्रह्मसूत्र (१, १, २०) से विदित है–'अन्तस्तद्धमेपिदेशात।' वस्तुतः वेदान्त सूत्र के भाष्य में आचार्य शंकर ने इस श्रुति का ब्रह्म में तात्पर्य स्पष्ट करते हुए कहा :–

'अथ य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते,
हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात् सर्व एव सुवर्णः'

साधकों के कल्याणार्थ ईश्वर अपनी इच्छा से मायामय शरीर धारण करते रहते हैं :—

स्यात् परमेश्वर स्यापच्छिावशाद माया-मयं रूपं साधकानुग्रहहार्थम्'।

व्यवहारतः अवतार प्रक्रिया इहलौकिक जीवन को जाज्वल्यमान बनाने तथा पारिलौकिक निःश्रेयस निमित्त चिर प्रतिष्ठित स्वरूप है। वसुन्धरा का प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थल ऐसे अवतारों, सन्तों महात्माओं से परिपूर्ण है।

इस श्रृंखला में स्वामी प्राणनाथ विशिष्ट कड़ी हैं। ये ऐसे समय में अवतरित हुए जब प्रान्तीय शासकों में आपसी वैमनस्य एवं केन्द्रीय तथा प्रान्तीय शासन में अति संघर्ष था। इसका परिणाम हुआ– सामाजिक अशांति एवं क्लांति। शासन तंत्र का प्रभाव मानव के धार्मिक कृत्यों पर पूर्णतया पड़ता है। धार्मिक परिवेश में वैषम्यता की भित्तियां इतनी सुदृढ़ हो गयी थीं कि मानव एक दूसरे से पृथक होता जा रहा था। घृणा के भाव विकसित हो रहे थे। श्रुतिवेचक ज्ञान एवं धर्म मार्ग से हटकर जीवकोपार्जन के विभिन्न साधनों

में अपने को पिरो रहे थे। फलतः शासन तंत्र धार्मिकता से स्वतंत्र होकर निरंकुश हो गया था। शाहजहां के शासन काल की तुलना में औरंगजेब के काल में आर्थिक स्थिति में अन्तर उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था। तथापि गुजरात व्यापारिक केन्द्र था। धनिक व्यापारी जलपोतों द्वारा विदेशों से व्यापार करते थे, फिर भी यहां की स्थिति में अन्तर पड़ता जा रहा था। एक ओर तो धार्मिक अवचेतना में वैष्णव एवं सूफी परम्परा का प्रचार बढ़ रहा था, इनमें रामानुज का विशिष्ट द्वैतवाद, निम्बार्क का द्वैताद्वैतवाद, माधवाचार्य का द्वैतवाद एवं वल्लभाचार्य का शुद्ध द्वैतवाद उल्लेखनीय है।

अद्वैत वेदान्त दर्शन के अन्तर्गत ब्रह्म सूत्र में चार अध्याय हैं तथा प्रत्येक में चार पाद हैं। प्रथम का नाम, 'समन्वयाध्याय' है, इसमें समग्र वेदान्त वाक्यों का साक्षात् प्रदर्शन है। तृतीय–'साधनाध्याय' है। रामानुज के मृत्योपरान्त लगभग डेढ़ सौ वर्षों में वैष्णव सम्प्रदाय में दो मत उत्पन्न हो गये थे। रामानुज ने ईश्वर को चित् एवं अचित् दो से युक्त ग्राह्य किया था। वे जगत् में निर्गुण वस्तु की कल्पना को असामान्य मानते हैं। विशिष्टद्वैत-वादियों का कथन था कि प्रलय में जीव तथा जगत् सूक्ष्म रूप धारण करेंगे।

निम्बार्क भी चित्, अचित् एवं ईश्वर के स्वरूप को रामानुज की भांति ग्राह्य करते हैं। निम्बार्क मत में ब्रह्म की कल्पना सगुण रूप में की गयी है। वल्लभाचार्य ने 'लीला' के रहस्य पर प्रकाश डाला है। उनके अनुसार 'लीला' विलास की इच्छा का नाम है। उनकी दृष्टि में अक्षर ब्रह्म क्षर पुरुष से श्रेष्ठ है। अक्षर ब्रह्म विशुद्ध ज्ञान-गम्य है। सामान्यतः समग्र वैष्णव दर्शन में ज्ञान की अपेक्षा भक्ति-प्रधानता अधिक है। वस्तुतः ईश्वर की शरण के अतिरिक्त अन्य कोई मर्म न था। फलतः भक्ति परक साहित्य का सृजन ही हुआ।

एतत्कालीन भक्ति-साहित्य के उदय में सूफीधारा का योग उल्लेखनीय है। इसकी उत्पत्ति में विभिन्न सिद्धान्त निहित हैं। सूफी 'अनल हक' के उपासक थे, ये दो प्रकार के थे–'बे-शरा' (शास्त्र बहिर्भूत) एवं 'ब-शरा' (शास्त्राचार परम्परा)। सूफियों ने भी नाथ पंथियों से कुछ ग्रहण किया तथा हिन्दुओं ने भी उनके प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित कर योग दिया। फलतः इस संदर्भ में कबीर का योगदान सराहनीय है। इसमें निराकार ईश्वर का गुणगान बहुशः है। अद्वैतवादी वेदान्तियों ने भी इनकी चर्चा की है। ये मनुष्य के चार भाग मानते है–(१) नफ्स (इन्द्रिय) (२) रूह (आत्मा), (३) कल्ब (हृदय) और (४) मारिफत (आत्मा-परमात्मा में लीन अवस्था)। वस्तुतः इन दोनों विचारधाराओं की समन्वयात्मक अनुभूति सृजन कर्त्ताओं की वाणी से प्रस्फुटित होने लगी। जन सामान्य की भी ये आवश्यकता थी।

फलतः आवश्यकता अनुरूप स्वामी प्राणनाथ ने भी समाज को समन्वय एवं एकजुटता की दिशा दी। इन्होंने आराध्य एवं आराधक का विभाजन सृष्टि के आधार पर किया। आराधक भी तीन प्रकार के माने हैं—ब्रह्म सृष्टि—अक्षरातीत उपासक, ईश्वरी सृष्टि—अक्षर उपासक तथा जीव सृष्टि—क्षर उपासक। प्राणनाथ शंकराद्वैत के संदर्भ में विश्व को मिथ्या नहीं ग्रहण करते, कारण कि इसमें ब्रह्म की सत्ता विद्यमान है, वस्तुतः दृश्य जगत् नश्वर तो है लेकिन मिथ्या नहीं। इसी भांति स्वामी जी के अनुसार भगवान की प्राप्ति का एक मात्र साधन भक्ति है।

द्वैतवादी के अनुसार ईश्वर सर्वज्ञ है तथा जीव अज्ञानी, ईश्वर चेतन है तथा जगत् जड़, इसी भांति वे जीव को भी चेतन मानते हैं। स्वामी जी के मतानुसार जीव सुप्तावस्था में सांसारिक वस्तुओं में लिप्त रहता है, अज्ञानी होता है। भक्ति मार्ग का अनुसरण कर वह अग्रेषित होता ही है।

वे जगत के उसी अंश को चेतन ग्रहण करते हैं जो अध्यात्म ज्ञान से परिवेष्टित हो तथा पूर्ण ब्रह्म से अवगत हो। अवतार के सम्बन्ध में प्राणनाथ जी ने कृष्णावतार को प्रमुखता प्रदान की है। इसी भांति परमात्मा का सम्बन्ध उन्होंने आत्मा से ग्रहण किया है।

परमात्मा सच्चिदानन्द हैं। प्राणनाथ जी के आराध्य अक्षरातीत ब्रह्म हैं। वे इन्हें 'राज' सम्बोधित करते हैं। इनका आनन्द अंग श्री श्यामा जी हैं। इन्हीं युगल स्वरूप की आराधना स्वामी प्राणनाथ जी ने की है।

निम्बार्क के द्वैताद्वैत में जीव, प्रकृति और परमात्मा ये तीनों आपस में भिन्न हैं। जीव एवं प्रकृति परमात्मा के आधीन हैं। प्राणनाथ जी परमात्मा का सम्बन्ध आत्मा से ग्रहण करते हैं, जीव से नहीं कारण कि परमात्मा सच्चिदानन्द है। आनन्द हेतु द्वैत रूप धारण किया। वस्तुतः श्यामा जी एवं सखियों का अस्तित्व स्थापित हुआ। स्वामी जी जीव को अधिक महत्व नहीं देते। इन्होंने चैतन्य की भांति श्रीकृष्ण को आराध्य माना है—मात्र ग्यारह वर्ष बावन दिन अर्थात् रास वाले श्रीकृष्ण। चैतन्य ने रमणीय उपासना को महत्व दिया है—प्राणनाथ जी ने गोपी भाव की आराधना की है। 'सखि भाव से भजिए भरतार।'

स्वामी प्राणनाथ ने विभिन्न योग प्रक्रियाओं एवं मंत्र चमत्कार की सिद्धियों का विरोध किया है। इसके स्थान पर उन्होंने प्रेम लक्षणा भक्ति को महत्व दिया है। इसी भांति वे विभिन्न मत-मतान्तर को भी महत्व नहीं देते। स्वामी जी कबीर से प्रभावित थे। जब वे लाठी बन्दर में रहने के पश्चात् मस्कत (सऊदी अरब) जाने को थे तथा मौसम अनुकूल न होने पर वे पुनः लाठी बन्दर होते ठट्टा वापस आये। यहां उन्होंने कबीर पंथी संत चिता-

मणि से सत्संग किया। स्वामी जी ने कबीर की गणना अक्षर भगवान तक पहुंचने वाले पांच महापुरुषों में की है—'पहले कह्या मैं साथ को, इन पांचों के नाम। शुकदेव और सनकादिक, कबीर शिव भगवान।' वे कबीर की हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य भावना एवं सामाजिक कुरीतियों की विरोधी भावना के हामी थे।

निर्गुण मार्गी भक्तों ने, सूफी साधकों के तथा सगुणमार्गी भक्तों ने आलोच्य-काल में रूपोपासना की परिणति की। इन तीन प्रकार के भक्तों में तीन पृथक-पृथक रूप हैं। निर्गुणमार्गी भक्तों ने प्रेम-पाश में भगवान के प्रति मधुर भाव के पद कहे। कबीर और दादू ने मधुर प्रेम की चर्चा की। भक्त रूपी प्रिया ही परमात्मा रूपी प्रिय के पास जाती है। रचनाओं में फलतः सूफी प्रभाव परिलक्षित होने लगा था। सूफी मत धार्मिक परिवेश के ऐकान्तिक भगवत प्रेम का परिचायक है, इसमें प्रेम की उद्दामता, प्रिय की प्राप्ति एवं उसमें आत्म विसर्जन का आकलन है। इसमें प्रेम और सौन्दर्य का समन्वय है। प्राणनाथ जी ने भी अलौकिक सौन्दर्य को ग्रहण किया। उनके युगल स्वरूप के संदर्भ में अंगों का 'नूर' तथा 'गोराई' दृष्टव्य है :—

'स्वरूप सुन्दर सनकूल सकोमल रूह देख नैना खोलनूर जमाल/ फेर फेर मेहबूब हृदये आवत जो किया किनने तेरा कौल फेल हाल/ जामा जड़ाव जुड़े अंग जुगत सों चार हार अम्बर करे झलकार/ जगमग पाग जोत जबेर ज्यों, मुख मीठे नैनों पे जाऊं बलिहार।'

स्वामी प्राणनाथ अपने धर्माभियान में जब मेड़ता (राजस्थान) गये तब इनके समक्ष लगभग पांच सौ शिष्य थे। यहां (मेड़ता) वे चार मास तक धर्मोपदेश देते रहे। मेड़ता में दो सौ से अधिक लोगों ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया था। यहां से ही उन्होंने कुरान एवं पुराण का समन्वयात्मक रूप लोगों के समक्ष रखकर एक-जुटता का संदेश दिया। वे 'खुलासा' शीर्षक ग्रंथ में कहते हैं:

'जो कुछ कहा वेद ने,
सोई कहा कतेव
दोऊ बन्दे एक साहिब के,
पर लड़त पाये बिन भेद'

स्वामी जी दोनों—हिन्दू-मुस्लिम को एक सूत्र में बांधना चाहते थे, वे इनमें मात्र भाषा का अन्तर ग्रहण करते हैं :—

'बोली जुदी सबन की,
सबका जुदा चलन
नाम जुदा कर दिया,
तायें समझ न परी किन'

प्राथनाथ जी अपनी इस अनुभूति को जन-जन में प्राणवान करना चाहते थे, वे सामाजिक परिप्रेक्ष्य की कुरीतियों को दूर करने में सक्रिय रूप ले रहे थे। फलतः मेड़ता से गोकुल, मथुरा, आगरा होते दिल्ली पहुंचे। दिल्ली राजनीतिक गति-विधियों का केन्द्र विन्दु थी। उस एकतंत्र-वादी राजनीति में शासक सर्वोत्कृष्ट

है, उसकी प्रवृत्ति समाज के कृत्यों में प्रतिविम्बित होती है। फलस्वरूप स्वामी जी दिल्ली में रहकर राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोना चाहते थे।

स्वामी प्राणनाथ इस निमित्त सोलह मास तक दिल्ली में रहे। उन्होंने काज़ी शेख इस्लाम, न्यायाधीश रिजवी खान, अमीर अकिल खान, शेख निज़ाम और कोतवाल सद्दी फौलाद तक अपना संदेश पहुंचाया।

संवत् १७३६ के अन्त में स्वामी प्राणनाथ ने अनूप शहर में 'सनन्ध' शीर्षक ग्रंथ की रचना की। 'दास वाणी प्रभाती' से स्पष्ट है:

'सनन्ध किताव कुरान की वाणी श्रुति साख पुराए।
शास्त्र पुराण कीरन्तन वाणी वेद के साथ दिखाए।'

'सनन्ध' में दोनों (कुरान-पुराण) का समन्वय है। इसकी भाषा हिन्दुस्तानी तथा अरवी शव्दों की वाहुल्यता है। इसी तरह 'लालदास-बीतक' से भी स्पष्ट होता है:

कही ए जो बात कुरान की,
तुम सो छिपाई लो आज।
सो ए अव कहत है,
इनमें बात अपनी है सब

स्वामी प्राणनाथ संवत् १७४० अमराई घाट में पन्ना पहुंचे।

यहां पर उन्होंने 'खुलासा' नामक ग्रंथ की रचना की थी, इसमें हिन्दी तथा अरवी भाषा का समावेश है। इस ग्रंथ में कुरान शरीफ के कई पारों (अध्यायों) पर प्रकाश डालते हुए समन्वय का पूर्ण प्रयास किया है। इसी भांति 'मारफत-सागर' की रचना भी पन्ना में की गयी थी। इसमें उर्दू का सम्मिश्रण है, हदीसों की मीमांसा एवं क़यामत के निशानातों पर प्रकाश डाला है।

प्राणनाथ की रचनाओं में हिन्दी, उर्दू, गुजराती, सिन्धी, अरवी तथा फारसी के शव्द हैं। भाषा के विषय में वे कहते हैं:

'सव को प्यारी अपनी,
जो है कुल की भाख
अव भाषा कहूं मैं किनकी,
यामे भाषा तो कई लाख'

जिस भांति भारत भूमि में विभिन्न संस्कृतियां विलीन होकर एक समन्वित भारतीय संस्कृति पल्लवित तथा पुष्पित हुई, उनकी भाषाएं अनेक हैं, सम्प्रदाय अनेक हैं पर आत्मा एक है, सिद्धान्त एक है, मूल उद्देश्य एक है। वस्तुत: स्वामी प्राणनाथ ने देश की आत्मा के अनुरूप समस्त विचार प्रक्रिया मानव कल्याण निमित्त प्रदान की। इन्होंने समस्त कुरीतियों को दूर कर एकता का मंत्र दिया:

जुदे जुदे नाम गांव हो,
जुदे जुदे भेष अनेक।
जिन कोई झगड़ो आप में,
धनी सब को एक॥

स्वीकार्यत: स्वामी प्राणनाथ ने देश एवं देश की परिधि लांघकर समन्वयात्मक अनुभूति को जन-कल्याण स्वरूप अल्पाक्षरों में विवेचित किया।

—किशोर गंज, पन्ना, म. प्र. ४८८००१

विघटन एक भ्रम : एक मानसिकता

वीरेन्द्र मिश्र

जंगल में मेरा अस्तित्व पिघलता गया
लगा मुझे घटकर मैं फूल हो गया हूं
राहों में रह-रहकर पांव फिसलता गया
और मुझे लगा कि मैं भूल हो गया हूं

o

संघर्षों के कई लिबास पहनकर चला
धरती पर रहकर आकाश पहनकर चला
उड़ा दिये यादोंवाले रूमाल बावरे
उड़ आये खुली हवा में नये मुहावरे
आंधी में मेरा अस्तित्व पिघलता गया
और मुझे लगा कि मैं धूल हो गया हूं

o

जल समाधि ले बैठे शब्दों के शीशमहल
डूब गयी साथ-साथ बातूनी चहल-पहल
डूब गयी स्याही में एक और चांदनी
जलतरंग टूट गयी मौन हुई रागिनी
सागर पर मेरा वर्चस्व मचलता गया
और मुझे लगा कि मैं कूल हो गया हूं

o

मैं भी तो मेघ था मैं भी तो था पवन
फिर ये क्या हो गया पूछा करता गगन
कौन छला जाता है करता है कौन छल
जाल है कि मछली है जिसका है नाम जल
नाव चली पवन कई रूप बदलता गया
मुझे लगा मैं भी मस्तूल हो गया हूं

o

रूप मिला कभी कभी मिली कड़ी धूप भी
गोरापन संवराया मिला अंधकूप भी
गीत जिया मैंने तो सबने समझा शग़ल
घोषित कर दिया गया मुझे आखिरी मुग़ल
बीच गगन में भैरव सूरज ढलता गया
और मुझे लगा मैं त्रिशूल हो गया हूं

—कृष्ण कुंज, दादाभाई रोड,
विलेपार्ले (पूर्व), बंबई—५६

भारतीय कैलेण्डर : वैदिक काल से आज तक

□ हंस

०००

भारतीय कैलेण्डर, भारतीय त्योहारों की भांति गणित पर ही आधारित है, और हज़ारों वर्ष पुराना है। उसमें संशोधन करने की ज़रूरत आज तक नहीं पड़ी है।

०००

भारतीय कैलेण्डर, विश्व का प्राचीनतम कैलेण्डर तो है ही, सर्वाधिक परिशुद्ध और परिपूर्ण कैलेण्डर भी है। उसे विश्व भर के कैलेण्डरों का जन्मदाता भी माना जा सकता है। अंग्रेजी कैलेण्डर जो आजकल सर्वाधिक प्रचलित है, वास्तव में भारतीय कैलेण्डर की नकल-मात्र ही है।

विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ—ऋग्वेद की कई ऋचाओं को पढ़कर पता लग जाता है कि ऋग्वेदकालीन भारतीयों को वर्ष के बारहों माहों तथा ३६० दिनों के अलावा, 'लीप ईयर' का भी ज्ञान था :

द्वादशारं न हि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परिद्यामृतस्य। आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्चतस्थु॥

—ऋग्वेद संहिता १।१६४।११

सत्यात्मक आदित्य का बारह अरों वाला चक्र द्युलोक के चारों ओर सतत भ्रमण करते हुए भी नष्ट नहीं होता है। हे अग्नि, इस चक्र पर युगों के ७२० जोड़ आरूढ़ हुए रहते हैं, अर्थात् सूर्यदेव के रथ का चक्र ही एक पूरा वर्ष है. और उसके बारह अरे ही बारह महीने हैं। और ७२० जोड़े, ३६० दिन और ३६० रात हैं। इस तरह, पूरा एक वर्ष हो गया।

'लीप-ईयर' और 'लीप मंथ' (अधिक-मास) का वर्णन ऋग्वेद की इस ऋचा में है :

'वेदमासो धृतव्रतो द्वादश: प्रजावत:। वेदाय उपजायते।'

(ऋग्वेद स. १।२५।८)

(धृतव्रत (वरुण) बारह महीनों और उनमें उत्पन्न होने वाले प्राणियों को जानता है, वह अधिक-मास (लीप-मंथ) को भी जानता है।)

यह अधिक-मास तब से आज तक भारतीय कैलेण्डर का एक अंग बना हुआ है, और उसे आधुनिक आविष्कार मानना एक भूल है।

महीनों का नाम—ऋतुओं के आधार पर

वैदिक महीनों के नामों का आधार थी—ऋतुएं। इन्हीं के आधार पर बारह महीनों के नाम रखे गये थे। और, हर दो-दो मासों के मधु से छः भागों में बांटने पर वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमंत और

शिशिर थे। वेदों में वैसे, अनेक स्थलों पर बारह महीनों के अन्य नाम भी वर्णित हैं।

भारतीय महीनों के आधुनिक नाम चैत्र, वैसाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन, आगे चलकर नक्षत्रों के आधार पर तब रखे गये थे, जब ज्योतिष-विद्या का काफ़ी विकास हो चुका था।

वैदिक खगोलविदों ने खगोल को २७ भागों में विभाजित कर उन्हें २७ चान्द्रनक्षत्रों की संख्या दी, क्योंकि प्रत्येक भाग को चन्द्रमा के मार्ग को ही २७ भागों में बांट कर उत्पन्न किया गया था। प्रत्येक खंड के सवा दो भागों को जोड़कर, उन्हें राशि माना गया। इस तरह, उन्होंने अंतरिक्ष में २७ चान्द्रनक्षत्र तथा बारह राशियों की कल्पना और स्थापना कर डाली। हर राशि में ३० अंश, और हर नक्षत्र में १३ अंश और १० कलाओं के प्रमाण से चान्द्रमार्ग को ३६० अंशों (दिनों) में विभाजित कर दिया गया।

महीनों के नाम के लिए वैदिक ज्योतिर्विदों ने नक्षत्रों को आधार बनाया जो उन्हें पूर्णिमा के अंतिम दौर में दिखायी देता था, जैसे पूर्णिमा के चित्रा नक्षत्र के निकट होने पर उस महीने का नाम चैत्र रखा गया। कृतिका से कार्तिक आदि।

तिथि, संक्राति तथा संवत्

अध्ययन से वैदिक खगोलशास्त्रियों ने यह भी जान लिया था कि चन्द्रमा अपने मार्ग से प्रत्येक वर्ष ११ अंश पीछे हटकर आता है, इसलिए चान्द्रमास का ऋतुओं से समान संबंध रखने के उद्देश्य से उन्होंने प्रत्येक तीन चान्द्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर, एक अधिक चान्द्रमास को उसमें जोड़ने की व्यवस्था की। इससे सौर वर्ष का तारतम्य स्थापित हो गया। सौर वर्ष के महीनों के नाम राशियों के नाम से प्रसिद्ध हैं, जैसे कुंभ मासम्, मेष मासम् आदि।

सौर मास के पहले दिन को संक्राति कहते हैं, और सूर्य और चन्द्रमा के मार्ग में १२ अंशों के अंतर के समय को तिथि।

वैदिक काल में सायन पद्धति द्वारा सौर वर्ष की गणना की जाती थी, और इसी पद्धति के अनुसार, भारतीय नया वर्ष २२ मार्च को आरंभ होता है। उस दिन सूर्य सायन मेष राशि में प्रवेश करते हैं। सायन तथा निरायन दो पद्धतियां प्रचलित हैं।

प्राचीन रोम के निवासियों ने सायन पद्धति को अपनाकर ही रोम नगर की स्थापना २१ अप्रैल, सन ७५३ को की और एक नये संवत् को जन्म दिया था। भारत में सृष्टि संवत्, कलि संवत्, युधिष्ठिर संवत्, बौद्ध संवत्, जैन संवत्, विक्रम संवत् तथा शक संवत् आदि प्रचलित हैं। लेकिन, सबसे अधिक प्रचलित है, 'ईसा संवत्' यद्यपि ईसा से हमारा सिर्फ़ इतना ही संबंध है कि हम उन्हें एवं वंदनीय ईश्वर-पुत्र मानते हैं।

इस्लामी कैलेण्डर हमारे देश में अधिक प्रचलित नहीं है।

□

चतुर्वेद और उनकी गरिमा

□

गिरिजाशंकर त्रिवेदी

वेद सार्वभौम ईश्वरीय ज्ञान है।

मनुस्मृति में वेद के लिए कहा है—'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' अर्थात् वेद धर्म का मूल है। उसमें समस्त ज्ञान भरा है। चारों वर्ण, तीनों लोक, चारों आश्रम, भूत, वर्तमान और भविष्य का पूरा ज्ञान वेद से होता है। सृष्टि की वास्तविक रचना और उसके उपयोग की वास्तविक विधियों का पता करना मनुष्य की बुद्धि से परे है। उसका सच्चा ज्ञाता तो परमेश्वर ही है। उसके बतलाये रहस्यों और विधियों का संग्रह वेदों में है।

वेद के चार भाग माने जाते हैं—ऋग्वेद यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इनके लिए ही ऋक्संहिता, यजुःसंहिता, सामसंहिता और अथर्वसंहिता नाम प्रसिद्ध हैं।

वेदों के लिए 'त्रयी' शब्द का प्रयोग भी बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। 'शतपथ' आदि ब्राह्मण ग्रंथों में तथा मनुस्मृति, गीता आदि में 'त्रयी' या 'त्रयं ब्रह्म' यानी तीन वेद का प्रयोग पाया जाता है। इन शब्दों का अर्थ ऐसे स्थलों में ऋक्, यजुः और साम किया जाता है। अथर्ववेद का उल्लेख नहीं है। इसी आधार पर यह विवाद प्राचीनकाल से चला आ रहा है कि अथर्ववेद को वेद माना जाये या नहीं।

जहां-जहां चार वेदों का उल्लेख है, वहां ग्रंथ रूप में चार संहिताओं से अभिप्राय है। चारों वेदों की रचनाओं का सन्निवेश तीन प्रकार की रचनाओं—पद्यात्मक वैदिकी रचना, गीतात्मक वैदिकी रचना और गद्यात्मक वैदिकी रचना में हो जाता है।

ऋग्वेद का अर्थ है—ऋचाओं का वेद। ऋचाएं अन्य वेदों में भी हैं। पर ऋग्वेद में केवल ऋचाओं का संग्रह है। ऋचा से स्तुति की जाती है। जिनकी स्तुति की जाती है, उनको 'देवता' कहते हैं। तात्पर्य यह कि इस संहिता में केवल देवताओं की स्तुतियां हैं।

ऋग्वेद की कई विशेषताएं हैं। वैदिक संस्कृति के स्वरूप को समझने के लिए, जितनी मौलिक और अधिक सामग्री ऋग्वेद में मिल सकती है, उतनी दूसरी संहिताओं में नहीं। वास्तव में वैदिक साहित्य का मूल ऋग्वेद ही है।

यजुर्वेद-संहिता के शुक्ल और कृष्ण नामों से दो भेद चले आ रहे हैं। इस प्रकार उसकी कुछ शाखाओं का सम्बन्ध शुक्ल यजुर्वेद से और कुछ का कृष्ण यजु-

वेद से है। शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद में वास्तविक दृष्टि से परस्पर यही अन्तर है कि जहां शुक्ल यजुर्वेद में केवल मंत्र-भाग का समावेश है, यहां कृष्ण यजुर्वेद में मंत्र-भाग और ब्राह्मण-भाग दोनों का समावेश मिला-जुला है। यजुर्वेद का घनिष्ठ संबंध याज्ञिक प्रक्रिया से है।

यजुर्वेद संहिता के समान सामवेद-संहिता का भी संग्रह याज्ञिक कर्मकांड की दृष्टि से ही किया गया है। सामवेद में संग्रह की गयी ऋचाएं सोम-याग में गायी जाती थीं। साम-गान की पुस्तकों में से ये ही ऋचाएं गान की दृष्टि से सजायी हुई रहती हैं। संहिता में तो वे ऋग्वेद के समान ही दी हुई हैं, केवल स्वर लिखने का प्रकार सामवेद का अपना है। साम-गान की दृष्टि से एक विशेष वेद की कल्पना में हमारे पूर्वजों की सुंदर मनोवृत्ति प्रकट होती है। इसी वेद के लिए भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है—वेदानां सामवेदोस्मि।

कई दृष्टियों से अथर्ववेद संहिता की भी अपनी विशेषता है। मुख्य विशेषता यह है कि अन्य तीनों संहिताओं का सम्बन्ध वैदिक यज्ञों से है, वहां अथर्ववेद का संबंध प्रायः जन्म, विवाह या मृत्यु आदि कर्म-कांडों से है।

ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, राजविद्या, अध्यात्म-विद्या आदि महत्वपूर्ण विषयों के अनेक सूक्त भी अथर्ववेद में पाये जाते हैं। अथर्व-वेद का पृथिवीसूक्त अपने विषय की अद्वितीय रचना है।

आर्यों का विश्वास है कि आदि सृष्टि के समय अर्थात् उत्पत्ति के साथ ही मनुष्य को परमात्मा की ओर से ज्ञान की प्रेरणा हुई। वही ज्ञान वेद हैं, वेद अपौरुषेय हैं। वेद तब के हैं, जब से प्रथम मनुष्य का संसार में प्रादुर्भाव हुआ था।

अपौरुषेय ज्ञान के बिना परलोक का कोई रहस्य विश्वासपात्र नहीं कहा जा सकता। परलोक पर अविश्वास ही नास्तिकता है। नास्तिकता मनुष्य जाति के लिए कितनी विघ्नकारी है, इसका अनुमान करना कठिन है। संसार से नास्तिकता दूर करने का एकमात्र साधन परलोक पर विश्वास करना है। परलोक पर विश्वास अपौरुषेय ज्ञान ही है।

वेद की ऋचाओं से श्रेष्ठ ईश्वर-स्तवन का अन्य कोई साधन नहीं है। ऋचाओं के शब्द इतने मधुर और प्रभावशाली हैं कि इनके उच्चारण मात्र से हृदय में अनुपम सात्विक आनन्द का स्रोत उमड़ पड़ता है। परंतु उनका अर्थ समझकर जिस दिव्य आनन्द की अनुभूति होती है, उसको वाणी दे पाना संभव नहीं हो पाता। लगता है कि हम ईश्वर के निकट पहुंच गये हैं और ईश्वरीय प्रकाश की किरणें हमारे हृदय में नयी ज्योति जगा रही हैं। मन देवत्व से ओतप्रोत हो उठता है।

वैदिक मंत्रों से मानव संकल्प को प्रभु का आशीर्वाद प्राप्त होता है। वेदों में अनगिनत ऋचाएं ऐसी हैं, जो मुख्यतः आशीर्वादा-

(शेषांश पृष्ठ ५९ पर)

ऐसे लिखते थे महान लेखक

□ धर्मवीर अरोड़ा

उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद से एक वार किसी सज्जन ने पूछा 'मुंशीजी ! आप किस तरह लिखते हैं ?'

प्रेमचंद झट वोले, 'जी ! कागज, कलम व दवात लेकर।'

'कृपया यह भी बता दें कि आप किस पैन से, कैसे कागज़ पर लिखते हैं ?'

'ऐसे कागज़ पर जिस पर पहले से कुछ न लिखा हो, और ऐसे पैन से जिसकी निव टूटी हुई न हो।' प्रेमचंद बोले।

'ओह ! वो तो हर कोई जानता है,' वे सज्जन किंचित झल्लाकर बोले, 'मैं तो यह जानना चाहता हूं कि आप किस मूड में लिखते हैं ?'

'मूड, कैसा मूड ?' प्रेमचंद ने चौंककर कहा, 'भाईजान ! 'मूड' वगैरा के ये चोंचले हम 'मजदूरों' के लिए नहीं हैं।'

महान लेखक प्रेमचंद वास्तव में 'महान' थे। लिखने के लिए उन्हें किसी मूड की ज़रूरत नहीं थी। वे एक ऐसे लेखक थे, जो किसी भी समय, किसी भी स्थान पर, किसी भी अवस्था में लिख सकते थे। कोई भी वस्तु उनके लेखन में रुकावट नहीं डालती थी।

लेखकों का सिरफिरापन

उक्त प्रसंग को पढ़कर आप यह मत समझें कि प्रेमचंद की तरह और लेखक भी 'मूड के गुलाम' नहीं होते। दरअसल लेखकों व साहित्यकारों के लिए सबसे महत्वपूर्ण चीज होती है–'मूड'। इस मूड को वनाने के लिए वे न जाने क्या-क्या करते रहते हैं ! इसे आप उनका सिर-फिरापन कहें तो कहते रहिये।

इस मूड की खातिर लेखकों को क्या-क्या नहीं करना पड़ता, यह मूड दुनिया भर के लेखकों से क्या-क्या नहीं करवाता रहा ? इन्हीं प्रश्नों पर यहां प्रकाश डाला जा रहा है।

सबसे पहले प्रसिद्ध अंग्रेजी साहित्यकार डा. जानसन के लिखने का ढंग ही जान लीजिये। डा. जानसन का लिखने का मूड तभी बनता था, जब उनकी पालतू बिल्ली उनकी मेज़ पर आकर बैठ जाती थी। यदि बिल्ली उठ जाती तो वे लिखना बंद कर देते थे।

फ्रांसीसी उपन्यासकार वालज़ाक को रात के समय लिखने की आदत थी। वे शाम को सोते और आधी रात को उठकर लिखने लगते थे। लिखते समय वे पादरियों जैसा खुला चोगा पहनते। लेखन-कार्य के दौरान वे थोड़ी-थोड़ी देर बाद कॉफी पीते रहते थे।

इनसे भी एक कदम आगे थे—फ्रेंच-कवि शिलर। उनका लिखने का मूड तभी बनता था, जब उनके पेट में कम-से-कम आधी बोतल शराब पहुंच जाती थी। जब वे लिखने बैठते थे तो ठंडे पानी से भरी बाल्टी में अपने दोनों पैर डाल लेते थे।

फुलस्केप कागज़ भी छोटा

हिंदी के प्रसिद्ध लेखक रांगेय राघव को फुलस्केप आकार का कागज़ भी छोटा पड़ता था। वे उससे चार गुना बड़े कागज़ पर लिखते थे, इस डर से कि कहीं कागज़ जल्दी न भर जाये। वे एक कागज़ पर दस-दस, बारह-बारह फुलस्केप कागज़ों के जितना 'मैटर' लिख लेते थे।

उपन्यासकार ड्यूमा यह मानते थे कि उपन्यास लिखने के लिए आसमानी रंग का कागज़ ही ठीक रहता है। कविताओं के लिए वे पीले रंग के कागज़ को सर्वश्रेष्ठ मानते थे। इसी प्रकार कवि सिटवेल को सफेद कागज़ से बेहद चिढ़ थी। वे सिर्फ नीले रंग के ही कागज़ पर लिखा करते थे।

परंतु जी. के. चेस्टरटन के मिज़ाज कुछ और ही थे। वे केवल पोस्टकार्ड-साइज़ के कागज़ पर ही लिखा करते थे। बड़े आकार का कागज़ देखकर वे डर जाते थे, और लिखने का मूड खो बैठते थे।

मुद्राएं लेखन की

फ्रांस के क्रांतिकारी लेखक विक्टर ह्यूगो को खड़े होकर लिखने की आदत थी। लिखते हुए जब कागज़ भर जाता तो वे उसे फर्श पर फेंक देते। अंत में जब वे लिखना बंद कर देते तो उन कागज़ों को उठाकर क्रम से रखते।

प्रसिद्ध हास्य-लेखक मार्क ट्वेन पेट के बल लेटकर लिखते थे। इससे उन्हें अच्छे विचार आते थे। बैठकर लिखने से उन्हें नींद आती थी।

परंतु बंगला उपन्यासकार शरच्चंद्र को आराम-कुरसी पर पसरकर बैठकर लिखने की आदत थी।

लेखन के लिए शांति या शोर?

नोबेल पुरस्कार विजेता हेमिंग्वे को शोरगुल से बहुत डर लगता था और लिखना कठिन मालूम पड़ता था। अतः वे रात के समय ही लिखते थे। और रात के समय प्रायः शांति ही होती है।

लेकिन वैजवुड को शोरगुल बहुत पसंद था। लिखते समय वे ऊंची आवाज़ में रेडियो सुनते रहते थे। इसी तरह एस्थर भी यह चाहते थे कि शोरगुल मचा रहे, घर में कलह मची रहे, ताकि वे अपना लेखन-कार्य जारी रख सकें।

लेखन के लिए शुभ समय

रूसी लेखक टालस्टाय सुबह के समय लिखा करते थे। वे कहते थे कि सुबह के समय मेरे अंदर बैठा आलोचक जागता रहता है, रात को वह सो जाता है।

सर आर्थर पिनेरी केवल रात में ही लिखते थे। इसी प्रकार ली कैक्स तीन पारियों में लिखा करते थे। पहली पारी सुबह चार बजे से शुरू होकर ग्यारह बजे

(शेषांश पृष्ठ ६३ पर)

चार चार अनेक विचार

□ योगेश प्रवीण

मनुष्य को मानवता के अनमोल गुण-रत्न से सुशोभित करने वाले आदि ग्रन्थ चार वेद हैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद । इन वेदों के उपवेद भी चार ही हैं जो क्रमशः आयुर्वेद, धनुर्वेद, गंधर्ववेद और स्थापत्यवेद हैं । वेदों के चार निरूपण मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद कहे जाते हैं । वेद मन्त्रों की व्याख्या के भी क्रमशः चार ग्रन्थ होते हैं ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, पंचाविंश ब्राह्मण और गोपथ ब्राह्मण । ब्रह्मा प्रजापति हैं, उनकी विद्वता चारों दिशाओं में समान रूप से प्रसारित हो इसीलिये वे चतुरानन हैं।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था के स्थापक ऋषि-मुनियों ने जीवन अवधि को चार आश्रमों में विभाजित किया है ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास । जीवन के जिन परम उद्देश्यों को पुरुषार्थ चतुष्टय की संज्ञा दी गयी हैं वे हैं अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष । इन परमार्थों में बाधक चार विकार कहे गये हैं—काम, क्रोध, मोह और लोभ । साथ ही साथ किसी अभीष्ट की साधना में साम, दाम, दण्ड और भेद वे चार उपाय हैं जो सदा सहायक होते हैं ।

हिन्दुत्व की बीजवासना निर्गुण ब्रह्म के सगुण स्वरूप की उपासना है, जिसमें परमेश्वर का नारायणी विग्रह सर्वोपरि है । इस पुण्य दर्शन में चतुर्भुज विष्णु का आकर्षण अद्वितीय है । जिसमें वे अपने चतुरावयवों से सुशोभित हैं । पाञ्चजन्य उनका शंख है, सुदर्शन उनका चक्र है, कौमोदकी उनकी गदा है और अरुणोत्पल उनका कमल है । पूर्णावतार कृष्ण का व्यूह अवतरण वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध चार रूपों का समूह है । चार दिशाओं के नाम हैं पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण जिनके दिक्पाल इन्द्र, कुबेर, वरुण और यम चार देवता हैं । इन दिशाओं के मध्य चार कोण स्थित हैं—अग्निकोण, नैऋत्यकोण, वायुकोण और इशानकोण ।

जम्बूद्वीप के चार धाम महातीर्थ माने जाते हैं और जो भरतखण्ड के चारों कोनों पर स्थित है, इनमें हिमगिरि उत्तर में बद्रीनाथ, नीलाचल पूर्व में जगन्नाथ, तमिलनाडु दक्षिण में रामेश्वरम् तथा सौराष्ट्र पश्चिम में द्वारिकाधीश का भवभयहारी दर्शन है । कुम्भ पर्व भारत के चार पीयूष पावन स्थलों पर मनाया जाता है—त्रिवेणी तट

पर प्रयाग में जब गुरु मेष राशि में और सूर्य मकर राशि में हो। गंगा तट पर हरिद्वार में जब गुरु कुम्भ राशि में और सूर्य मेष राशि में हो। क्षिप्रातट पर उज्जैन में जब गुरु सिंह राशि में और सूर्य मेष राशि में हो तथा गोदावरी तट पर नासिक में जब गुरु सिंह राशि में और सूर्य भी सिंह राशि में हो। प्रमुख बौद्ध तीर्थ भी चार ही हैं, जो गौतम बुद्ध के जन्म (लुम्बिनी), बोध (गया), उपदेश (सारनाथ) और निर्वाण (कुशीनगर) से सम्बन्धित हैं।

एक मन्वन्तर को चार युगों में बांटा गया है—सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग। इन युगों की प्रवृत्ति के अनुसार चार युगधर्म भी निर्धारित हैं सतयुग के लिए तप, त्रेता के लिए यज्ञ, द्वापर के लिए पूजन और कलियुग के लिए नाम संकीर्तन। मनुष्य के अस्तित्व की चार अवस्थाएं मानी गयी हैं—जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। समस्त जीवजगत प्राचीन पद्धति के अनुसार चार आकारों में विभाजित किया गया है पिण्डज, अंडज, स्वेदज एवं उद्भिज। मनुसंहिता के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्णों में मनुष्य समाज विभक्त होता है। माता, पिता, आचार्य और अतिथि ये चार प्रत्यक्ष देवता माने जाते हैं। शास्त्रों ने चार प्रकार के ही धर्मपुत्र बताये हैं भृत्य, शिष्य, पोष्य तथा अंगज। सनकादिक मुनीश्वर नाम से विख्यात चार भाई हैं सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन। इसी प्रकार मोहन, मारण, उच्चाटन और वशीकरण ये चार मन्त्र प्रसिद्ध हैं।

वेदान्त दर्शन में चार प्रमुख तत्वों ब्रह्म, जगत, जीव और आत्मा का निरूपण किया गया है। आत्मा की मुख्य चार प्रवृत्तियों का शास्त्रोक्त उल्लेख मिलता है बुद्धि, मन, चित्त और अहंकार। भगवद्भक्ति में भक्त के भी चार प्रकार पाये जाते हैं आर्त, जिज्ञासु, ज्ञानी और अर्थार्थी। शरणागति के भी चार स्वरूप होते हैं—स्मरण, आज्ञा, सन्तोष और समर्पण। ब्रह्मवाद की चार विभक्तियां हैं अद्वैतवाद, द्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद तथा विशिष्टा द्वैतवाद। जीवात्मा की मुक्ति भी चार प्रकार की कही गयी है, सायुज्य, सालोक्य, सारूप्य और सामीप्य। अन्तरात्मा की शक्ति भी चार प्रकार की निर्देशित की गयी है—अचिन्त्य, अभय, सहज एवं पद। यदि विद्या को चार तरह का बताया गया है बुद्धि, उपलब्धि, ज्ञान और प्रत्यय तो अविद्या भी चार तरह की होती है—संशय,

चित्र : सतीश चव्हाण

विपर्यय, अनध्यवसाय और स्वप्न ! देवता का प्रताप हो या नर का पराक्रम उसमें भी चार ही गुण विद्यमान हैं ऐश्वर्य, वीर्य, तेज और बल ।

भक्ति की वैष्णवधारा का प्रवाह चार भागों में बांटा गया है निम्बार्क स्वामी का 'हंस सम्प्रदाय', रामानुजाचार्य का 'श्री सम्प्रदाय', मध्वाचार्य का 'ब्रह्म सम्प्रदाय' एवं विष्णु स्वामी का रुद्र सम्प्रदाय । मुरली मनोहर के लीलाक्षेत्र वृन्दावन में कृष्णाकर्षण के चार ही पंथ हैं, वल्लभमत, चैतन्यमत, राधावल्लभीयमत और निम्बार्कमत । इसी तरह शैव सम्प्रदाय भी चार शाखाओं में विभाजित हुआ है शैव, पाशुपत, कालदमन और कापालिक ।

निर्गुण ब्रह्म की व्याख्या सत्, असत्, सज़स् एवं तमस गुणों में की गयी है। प्रमेय के चार भेद हैं प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द । जैन दर्शन शास्त्र में जिस मतिज्ञान को महत्व दिया गया है वह अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा चार में विभक्त है । जैन आस्था में चार मूल सूत्र स्थापित किये गये हैं आवश्यक सूत्र, विशेष आवश्यक सूत्र, दशवैकालिक सूत्र और पाक्षिक सूत्र, बौद्धों का करुणवाद चार आर्य सत्यों पर आधारित है सर्वदुखम्, दुखसमुदाय, दुखनिरोध, गामिनी प्रतिपद । सूफ़ीमत में साधक की क्रमशः चार प्रधान स्थितियां होती हैं शदूद (चेतना), नूर (ज्योति), इल्म (ज्ञान) और वजूद (अस्तित्व) और साधना की चार ही अवस्थाएं हैं शरीयत, तरीकत, हकीकत तथा मरिफत । भारतीय वाद्यों को भी चार श्रेणियों में बांटा गया है तन्त्र वाद्य, सुषिरवाद्य, अवनद्ध वाद्य तथा घन वाद्य ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास को आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल में बांटकर कालक्रम के चार खण्ड किये गये हैं । भरत मुनि के नाट्य शास्त्र के अनुसार अभिनय चार प्रकार का हो सकता है-आंगिक, वाचिक, आहार्य एवं सात्विक । चार प्रहर का दिन और चार प्रहर की रात्रि होती है । चातुर्मास या चौमासा संन्यासियों का आश्रमवास काल कहा गया है इस चौमासे में आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन मास होते हैं । जन्म कुण्डली में जब चार ग्रह प्रतिकूल स्थिति में आते हैं तो उस दशा को चौगिरही कहते हैं ।

चार का सूत्र तो तब और भी सार्थक हो उठता है जब भारत भूमि के पवित्र प्रतीक के रूप में महाराज दशरथ के आंगन में चार कुंवर—राम (वैराग्य), लक्ष्मण (कर्म), भरत (धर्म) और शत्रुघ्न (मर्म) की तरह मिलते हैं तथा सीता (मुक्ति), उर्मिला (विरक्ति), माण्डवी (भक्ति) तथा श्रुतिकीर्ति (युक्ति) की तरह प्रकट होती हैं । पुराण प्रसिद्ध मन्त्र है

गीता गंगा च गायत्री, गोविन्देति हृदस्थिते
चतुर्गकार संयुक्ते पुनर्जन्म न विद्यते ।।

रणभूमि में सैन्य संचालन के लिए

युद्धशास्त्र में गज, अश्व, रथ और पैदल को चतुरंगिणी सेना की संज्ञा दी गयी है। इसी आधार पर पूर्व प्रचलित खेल 'चतुरंग' आज 'शतरंज' की शक्ल में खेला जाता है।

वैष्णवों की चार प्रमुख जयन्ती उत्सव की तरह मनायी जाती है जो कि अवतारों के जन्म दिन हैं। ये पर्व हैं श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, रामनवमी, नृसिंह चौदस तथा वामन द्वादशी। चन्द्रमास की चार चतुर्थी प्रसिद्ध हैं—करवा चौथ, बहुला चौथ, गणेश चौथ, और गणगौरी चौथ। भारत के परम्परागत प्राचीन पर्व भी चार ही हैं—दीपावली, होली, रक्षाबन्धन और दशहरा।

मार्ग में चार रास्ते जहां एक दूसरे से गले मिलते हैं तो वो स्थल चौराहा बन जाता है। गृहस्थों में विवाह के चौथे दिन ही नववधू चौथी की रस्म के अनुसार अपने नैहर लौटती है। चार पाये की चंदन चौकी पर बिठाकर शादी में कन्या के हाथों में सिंदूरदान देकर सधवाएं उसे सुहागिनों में शामिल करती हैं।

पूजा पर्व पर हिन्दू घरों में आंगन की अल्पना पर या मंगलकलश पर चौमुख दीप जलाना शुभ समझा जाता है। लाल-हरे-पीले और नीले चार प्रधान रंगों का मेल चौरंगा कहलाता है। कलकत्ते की चौरंगी, बम्बई की चौपाटी, लखनऊ का चौक, जयपुर की चौपड़, हैदराबाद की चार मीनार और श्रीनगर का चार चिनार सब में चार का चमत्कार है। और इस शेर में भी

किया है पांच दिन के बाद
उसने वस्ल का वादा
किसी से सुन लिया होगा
कि दुनिया चार दिन की है!

—पंचवटी, ८९, गौसनगर,
लखनऊ-२२६०१८

□

(पृष्ठ ५३ का शेषांश)

त्मक हैं तथा मनुष्य को उसके गौरव का स्मरण कराती हैं। कुछ ऋचाओं में ईश्वर ने मनुष्य को संबोधित करके उसके कर्तव्य-कर्म की आज्ञा दी है। ये आदेश व्यक्तिगत जीवन को भी दिशा देते हैं एवं सामाजिक जीवन की आचारसंहिता का निर्देशन भी करते हैं। वेदों में समष्टि धर्म को व्यष्टि-धर्म से कम महत्व नहीं है। यहां तक कि वैदिक प्रार्थनाएं प्रायः बहुवचनात्मक हैं।

लगभग पांच हज़ार वर्षों से वेद को संहिता का पाठ अविच्छिन्न रूप में निरंतर चला आ रहा है। क्रमपाठ, जटापाठ इत्यादि पाठ-क्रमों से यह परंपरा जीवित है। स्मरण-शक्ति का ऐसा अपूर्व दृष्टान्त विश्व में और कहीं नहीं मिलता।

हमारे लिए यह परम सौभाग्य है कि वेद अब भी सुरक्षित हैं। वे हमारे देश की अनमोल निधि हैं। अपनी अद्वितीय भावना और अमर जीवन-संदेश के कारण उनका सार्वकालिक महत्व है।

□

ज़ुबां ख़ामोश है...

□ बालकृष्ण गर्ग

ज़ुबां ख़ामोश है, उठती नहीं है लेखनी, यारो !
हुई हैरत को भी हैरत, चढ़ी ग़ैरत को भी ग़ैरत,
लगी कालिख के मुंह कालिख, गड़ी है शर्म से लानत !
पता क्या था कि ऐसी भी घड़ी है देखनी, यारो !
ज़ुबां खामोश है, उठती नहीं है लेखनी, यारो !

ये ठेकेदार मजहब के, दरिंदों से भी बदतर हैं,
ये बनते शेर हैं, लेकिन सियारों से भी कमतर हैं।
फ़रेबी गीदड़ों ने मिलके खा ली सिंहनी, यारो !
ज़ुबां खामोश है, उठती नहीं है लेखनी, यारो !

कलंकित कर दिया है कायरों ने फ़र्ज़े-इंसानी,
हुआ है किस कदर गंदा यहां तलवार का पानी।
निभाई है स्वयं हाथों ने दिल से दुश्मनी, यारो !
ज़ुबां खामोश है, उठती नहीं है लेखनी, यारो।

डसें जब आस्तीं के सांप, तो फिर क्या करे कोई,
बनें रक्षक ही जब भक्षक, तो आखिर क्या करे कोई !
हमें इंसानियत भी पड़ गयी है बेचनी, यारो !
ज़ुबां खामोश है, उठती नहीं है लेखनी, यारो !

उसे तो मौत ने आकर हयाते-जाविदां दे दी,
उसे तो आसमां ने रौशनी-ए-कहकशां दे दी।
छुपा है चांद, फिर भी खिल रही है चांदनी, यारो !
ज़ुबां खामोश है, उठती नहीं है लेखनी, यारो !

गगन पर जब तलक ये चांद और सूरज चमकते हैं,
ज़मीं पर जब तलक गंगो-जमुन दरियाव बहते हैं—
बजेगी इंदिरा गांधी की तब तक रागनी, यारो !
ज़ुबां ख़ामोश है, उठती नहीं है लेखनी, यारो !

—संगीत कार्यालय, हाथरस, उ. प्र.

□

यदि मुझे नोबेल पुरस्कार मिल जाता तो...

□ कमला दास

इस वर्ष साहित्य के नोबेल पुरस्कार के लिए श्रीमती कमला दास का नाम मनोनीत हुआ था। यह पुरस्कार उन्हें न मिलने पर, उनकी प्रतिक्रिया क्या हुई, यह पढ़िये, स्वयं उन्हीं के शब्दों में। यह लेख त्रिवेन्द्रम में अय्यप्पा प्रसाद से हुई उनकी भेंट पर आधारित है।

जब मुझे ज्ञात हुआ कि इस वर्ष के साहित्य के नोबेल पुरस्कार के लिए मेरा नाम मनोनीत हुआ है, तो एक उत्सुकता मेरे मन में व्याप्त गयी थी। लेकिन, जब यह समाचार आया कि यह नोबेल पुरस्कार चेकोस्लोवाकिया के कवि जारोस्लाव सीफर्त को मिल गया है, तो मेरी मन:स्थिति पी. टी. उषा जैसी थी, जो ओलिम्पिक दौड़ प्रतियोगिता में एक पदक जीतने में एक सेकंड से भी कम समय से चूक गयी थी। मेरा मूड एकदम बदल गया, और मैंने सोचा, 'यह हानि मेरी ही नहीं, मेरे देश की भी है। यदि मुझे यह पुरस्कार मिल जाता, तो सारा देश अपार हर्ष और गर्व अनुभव करता।'

फिर मुझे खयाल आया कि नोबेल पुरस्कार जीतने के लिए गुणी और योग्य होना ही पर्याप्त नहीं है, भाग्यवान् होना भी ज़रूरी है। मुझे यह भी खयाल आया कि इस पुरस्कार के लिए मनोनीत होना भी कम सम्मान की बात नहीं है। विशेष रूप से तब जब कि मेरा नाम नादिन गार्डियर, जोयेस कैरोल ओट्स (जिनकी एक लंबी कहानी 'शर्म' 'नवनीत' में प्रकाशित हो चुकी है—सम्पादक) और डॉरिस लेसिंग जैसे महान साहित्यकारों के साथ मनोनीत हुआ था।

मेरी कविताओं के अनुवाद अंग्रेजी के अलावा यूरोप की प्राय: सभी भाषाओं में हो चुके हैं। इसलिए, मुझे पूरी आशा थी कि वे उन लोगों की निगाह से ज़रूर गुज़री होंगी, जो नोबेल पुरस्कार के लिए नाम प्रस्तावित करते हैं। यह आशा तब और बलवती हो गयी थी, जब मैंने देखा कि स्वीडिश अकादमी के मुखपत्र के एक अंक का आधा भाग सिर्फ़ मेरी कविताओं से ही भरा पड़ा है। कुछ समय पूर्व, उन्होंने मुझसे कुछ और कविताएं भेजने को कहा था, लेकिन घर के कामों में व्यस्त होने के कारण मैं ऐसा न कर पायी। काश! मैं वे कविताएं भेज देती, तो शायद मुझे नोबेल पुरस्कार अवश्य मिल जाता।

लोग मुझसे पूछते हैं कि क्या जारोस्लाव सीफर्त को पुरस्कार देना उचित

था या नहीं। तो, मेरा कहना यह है कि उन्हें इस बुढ़ापे में इतनी राशि की क्या आवश्यकता थी? यदि मुझे पुरस्कार मिल जाता, तो मैं समुद्रतट पर एक घर बनवाती। समुद्रतट पर स्थित इस घर में सफ़ेद खंभे होते, और होती ग्रेनाइट की एक मेज़ जिसका प्रयोग मैं अपनी कविताओं को लिखने के लिए करती। इस राशि के कारण मैं मां, पत्नी और बेटी के कर्तव्यों से मुक्त हो जाती। कभी-कभी मेरे मन में यह अनुभूति बड़ी तीव्र हो जाती है कि यह सब सतही बातें हैं, और मैं कुंठित हूं, क्योंकि मेरा वास्तविक 'स्व' कुछ और पाने के लिए व्यग्र रहता है। यदि आप को कभी समाचारपत्रों में यह पढ़ने को मिले कि मैं कहीं भाग गयी हूं, तो आपको आश्चर्य नहीं होना चाहिये।

ग्रेनाइट की मेज़ की ज़रूरत मुझे इसलिए है कि मेरे पास कभी अपनी लिखने की मेज़ नहीं रही। अब तक मैं खाने की मेज़ को ही लिखने की मेज़ के रूप में इस्तेमाल करती आयी हूं। ग्रेनाइट की मेज मुझे इसलिए चाहिये कि कोई उसे आसानी से हटा न सके। और वह बड़ी भी होनी चाहिये, ताकि मैं अपनी कविताएं उन पर फैला सकूं, और जब जी चाहे, उनमें से पसंदीदा कविताओं का चुनाव कर सकूं, और उनका संपादन कर सकूं। मेरा सपना है कि मेरे पास ऐसी मेज़ हो; उसके आने पर मेरे कविता-लेखन की गति और
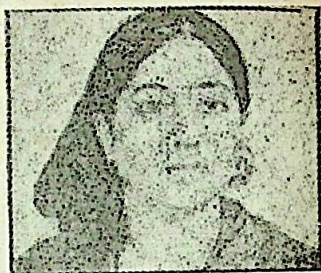
कमला दास

अधिक बढ़ जायेगी।

मेरा कविता-लेखन आज भी बंद नहीं हुआ है। आपको एक राज़ की बात बताऊं। मैं प्रतिदिन तड़के उठकर, घर के काम शुरू करने से पहले, कविताएं लिखना आरंभ कर देती हूं। ऐसी कविताओं की संख्या २००० से अधिक हो चुकी है, और वे शीघ्र ही संपादित रूप में प्रकाशित होंगी। कविताओं के संपादन के लिए मैं एक होटल का कमरा बुक करूंगी, ताकि कोई मेरे कार्य में विघ्न उपस्थित न कर सके। लेकिन, फिलहाल समस्या यह है कि मेरे पास होटल के बिल अदा करने लायक राशि नहीं है।

मुझसे यह प्रश्न भी प्रायः पूछा जाता है कि क्या मैं भविष्य में गद्य भी लिखूंगी? नहीं, मैं अब गद्य नहीं लिखूंगी। अब तक मैंने जो भी गद्य लिखा, पैसा कमाने के लिए लिखा। मुझे अपने बच्चों की शिक्षा और ज़रूरी सामान खरीदने के लिए रक़म की ज़रूरत थी। अपनी पहली पुस्तक से हुई आय से मैंने एयर कंडीशनर खरीदा था। लेकिन, मेरे प्राण कविताओं में हैं, गद्य में नहीं।

['संडे आबज़र्वर' से साभार]

□

क्लर्क से नोबेल पुरस्कार विजेता तक

□

१९२४ का साहित्य का नोबेल पुरस्कार जीतने वाले व्लादीस्लाव स्टेनिस्लॉस रेमां की रचनाएं सामान्य जन की निरूढ़ अच्छाई की ओर, जिसे साहित्य द्वारा विकसित किया जा सकता है, संकेत करती हैं। वे विश्व-साहित्य में एक द्वीप की भांति अलग नज़र आती हैं।

वे सामान्य जन को भली भांति समझते थे, क्योंकि वे स्वयं उसी के समाज का एक अंग थे। बचपन में वे भेड़ें चराया करते थे, क्योंकि उनके पिता की, जो एक मामूली सी चक्की के मालिक थे, आमदनी इतनी नहीं थी कि वे उनका पूरा खर्चा वहन कर सकते थे।

सन १८६८ में रूसी पोलैण्ड में एक किसान परिवार में जन्मे रेमां उपद्रवी छात्र थे, और स्कूल के अनुशासन को भंग करने के अपराध में कई बार उन्हें दंड मिला। एक बार स्कूल से निष्कासित भी हुए। स्कूल छोड़कर एक दुकान में क्लर्क बने। उसके बाद, टेलीग्राफिस्ट के रूप में रेलवे में नौकरी करने लगे।

उनकी रचनाएं पोलैण्ड के किसानों और मामूली लोगों के संघर्षपूर्ण जीवन के तारीखी दस्तावेज़ हैं। नोबेल पुरस्कार मिलने के बाद, उन्होंने अधिक नहीं लिखा। उनका निधन ५ दिसम्बर, १९५५ को हुआ।

०००

शॉ की ओर से बसु को—सप्रेम !

नोबेल-पुरस्कार विजेता जॉर्ज बर्नार्ड शॉ विश्व-विख्यात भारतीय वैज्ञानिक आचार्य सर जगदीशचन्द्र बसु के प्रशंसकों में से एक थे।

एक अवसर पर अपनी कृतियों के विशेष संस्करणों की प्रतियों को भेंट करते हुए, उन्होंने आचार्य जगदीशचन्द्र बसु को लिखा था—'सबसे छोटे जीवशास्त्री की ओर से सबसे बड़े जीवशास्त्री को सप्रेम भेंट !'

□

(पृष्ठ ५५ का शेषांश)

तक चलती, दूसरी पारी शाम सात बजे से शुरू होकर रात दस बजे तक और तीसरी पारी रात ग्यारह बजे से रात दो बजे तक चलती। बचे हुए समय में वे या तो सोते या चाय पीते रहते थे।

गार्डनर सैफिल्श शनिवार के अतिरिक्त शेष दिनों में रात को लिखते थे। शनिवार को वे दोपहर के वक्त ही लिखा करते थे।

एच. डेनिस ब्रेडली सिर्फ रविवार को ही लिखा करते थे। वे इसी दिन को लेखन के लिए शुभ मानते थे। लेखन के दौरान वे अपनी खिड़की से समुद्र की लहरें देखते रहते थे।

—६७४५, गुड़िया सराय,
रिवाड़ी—१२३४०१ (हरियाणा)

□

नया वर्ष

बालकृष्ण मिश्र

एक वर्ष और,
चलो बीत गया।
एक पृष्ठ और,
नया पलट गया
उम्र की क़िताब का।
एक बार और,
अनजाने ही—
गीत लिखा प्यार का।
रूप वह गुलाब का
एक बार और—
मुझे जीत गया।

एक अश्रु और,
गिरा फिसल गया
जितने रिसते व्रण हैं।
कोई हमदर्द नहीं,
जीवन कुछ और नहीं—
सिर्फ समय का ऋण है।
जाते हुए चुपके से
एक बार और
कानों में कह गया।

एक दर्द और,
मिला लिपट गया—
मेरी तनहाई से,
एक बन्द और,
नया सिमट गया—
दुख की अंगड़ाई से।
जीवन की गागर से
एक बूंद और
गिरा रीत गया।

—निकट सदर अस्पताल, रायबरेली, उ. प्र.

सुधा की हिन्दी कहानी

□

बन्ने क्या मांगे

मेरे चौथे और सबसे छोटे बेटे के शुभविवाह का दिन है। लड़की वाले दूर नहीं हैं, फिर भी बारात जाने की गहमागहमी ऐसी है मानों सौ योजन जाना हो। परेशानियां ठिठोलियों से मात खा रही हैं। मेरी बड़ी बहू मेरे बड़े दामाद से कह रही है –

'मेहमान जी, बउआ के जूता के फीता बांध दिऔन।' जीजा बेचारा छोटे साले की सेवा करने को श्रुतिबद्ध है। लोग हाथ का काम छोड़कर यह तमाशा देखने आते हैं। मेरे बेटे का दोस्त चुटकी लेता है–'खबास (सेवक) को कितनी बक्सीस चाहिये?'

जीजा कम नहीं है, उम्र में इन सबसे बड़ा है, तेज़ तर्रार भी है, हंसकर प्रतिवाद करता है–'साले, बक्सीस में तो तुम्हारी बहन पहले ही ले गया हूं।'

मेरी बेटी आंखें तरेरती है—'क्या कहा ? मैं बक्सीस हूं ? दान-दहेज, साज-सामान के साथ आपके घर गयी हूं। बक्सीस होगी आपकी बहन।'

मेरा दामाद जीभ निकालकर दांतों से दबाते हुए व्याज-भय दिखाता है। सच: दूल्हे से कहता है—'देख रहे हो न ! यही हाल होगा तुम्हारा भी। फंस रहे हो जाल में, बच्चू !'

दूल्हा उतना ही मुस्कुराता है जितना चाहिये। सब कुछ वही हो रहा है जो होना चाहिये। कोई कंघी कर रहा है, कोई अपने कुरते के टूटे बटन को देखकर सूई-तागा खोज रहा है, कोई भंडार में आ-जा रहा है, कोई बैठकर रखवाली कर रहा है, बच्चे कार का हार्न बजा रहे हैं, बाजे वाले बाजा ठीक कर रहे हैं, मेरी पत्नी व्यस्तता के बीच रेजगारी खोज रही हैं—बेटे को निछूछेंगी। बहुएं और बेटियां बनारसी साड़ी और सारा आयोजन सम्हाल रही हैं।

'सब लोग खा चुके ?' मेरी पत्नी बार-बार पूछ रही है। लोग डकार ले-लेकर सिर हिला रहे हैं।

जो नहीं होना चाहिये वह नहीं होगा। खाली घड़ा नहीं रहे। भिखमंगे नहीं रहें। रोगी-पापी न आ जाय सामने। शुभ-शुभ की बात है। सब सुन्दर, सब शिव।

इसीलिए गनपतिआ माय, हमारी पुरानी महरी, जिसने घर के सभी लड़कों को तेलकूर (किसी चीज से बलैया लेकर उसे परे फेंक देना) किया है, सतर्क है—'भाग। भाग इहां से। हिनका भीख मांगे के इहे बेर सुछलैन। बउआ हम्मर जाइअ लछमी लावे। अखनी भीख न मिलतउ।'

भिखमंगिन बुढ़िया नहीं थी। भूख से जर्जर थी। दो बच्चे भी थे। शायद एक लड़का, एक लड़की। पता नहीं चलता था। दोनों के चेहरे एक से भुतहा दीख रहे थे। तीनों के मुख पर लोलुप आंखें थीं। लटके हुए ओठ थे और मान-अपमान के परे जिजीविषा की एक ढीठ लपट भी थी।

तीनों टस से मस नहीं हुए। ठीक सीढ़ी के नीचे बैठ गये।

'हे भगवान ! इ सब कहां से आ गया।' आते-जाते लोग दृष्टि डालने और फेरने लगे। किसको फुरसत थी !

'त, तू न हटबे ? तोरा धक्का-मुक्का चाही की ?' —गनपतिआ माय मालकिन को तो कुछ समझती ही नहीं है, भिखमंगिन की अवज्ञा कैसे सहती।

मैंने सुना। देखा। समझा। ऐसा नहीं कहूंगा। मैं तिलमिला गया। एक अदृश्य हाथ का भरपूर तमाचा... मैं हिल गया।

गनपतिआ माय को कहा—'मालकिनी के बोला लबहुन।' सम्वाद पाकर पत्नी झुंझला गयी। शायद गनपतिआ माय ने भिखारिन की भी बात कह दी होगी। बड़बड़ाती हुई

आयी, 'अपने के कामों के बेर बिना मतलब के बात सुझइअ। हम डाला सरिअवइछि आ अपने के ....' बोलते-बोलते वे रुक गयीं, क्योंकि उन्होंने मेरी आंखों में छलछला आये आँसुओं को देख लिया था। लम्बा साहचर्य है। हृदय की बात बूझ जाती है। प्रश्नभरी दृष्टि से पूछा—'की भेलई ?' मैंने उंगली उठाकर सामने दिखाया। सीढ़ी के नीचे बैठे मलिनता के पुंज की ओर इशारा किया। कंठावरोध के बीच कहा—'चिन्हईछी। इ के हतन !'

हतवाक्; निर्विवाद मेरी पत्नी ने अपने भंडार से सर्वोत्तम पदार्थ लाकर स्वयं ही परोसा।

तीनों उस पर टूट पड़े। अन्न ब्रह्म को क्षुधा रूपेण माता का साक्षात्कार हुआ। वातावरण में तृप्ति सुगंध बनकर डोलने लगी। बाजेवाले सुर मिला चुके थे। पंडित जी ने कहा—'अब लड़िका के गाड़ी में बैठायल जाओ।'

सुहागिनें गाने लगीं—'बन्ने क्या मांगे, सोने की अंगूठी रूमाल मांगे।'

मैंने देखा कोने के उस बड़ के पेड़ के नीचे अलसाई बैठी भिखारिन के बच्चे उमंग में गीत पर पांव हिला-हिलाकर ताल दे रहे थे—'डोली में दुलहिन सजाके मांगे ... हो बन्ने क्या मांगे ...'

—बिहार शिक्षा सेवा, दुमका, देवघर (बिहार)

□

दरिद्रता का संताप

दरिद्रता सभी को खलती है। सभी को कष्ट देती है। किंतु जब कोई समृद्धिशाली व्यक्ति अभाव से पीड़ित हो जाता है तो उसकी दरिद्रता का डंक अधिक चोट करता है। और यदि उसका नाम हो और उसके समय की अमावस्या के दिनों में भी लोग उससे अपने पुराने नाम के अनुरूप बर्ताव चाहें तो उसका संताप असहनीय हो जाता है। संस्कृत में तो इस संबंध में बहुत कुछ कहा गया है।

हिंदी में भी ऐसे लोगों की मर्मव्यथा के वर्णन अनेक स्थानों पर मिलते हैं। एक कवि कहता है :

संपति थोड़ी, पत बड़ी यह विपति बड़ आय।
ओछो अंचल कुलबधू ढांपत अंग लजाय।

घाघ ने भी चित्ताकर्षक ढंग से यही बात कही है।

एक तो बसै सड़क पर गांव दूजे बड़े बड़ेन मां नांव (नाम)।
तीजे भये द्रव्य से हीन घघ्या हमको विपता तीन।

— डा. गोपालप्रसाद 'वंशी'

□

प्राचीन मालवा में

चित्रकला के साहित्यिक प्रमाण

□ डा. दुर्गा शर्मा

अनेक प्राचीन ग्रन्थों में मालवा क्षेत्र में चित्रकला के विद्यमान होने का प्रसंग ज्ञात होता है। पुराणों में उल्लेख आता है कि अवन्तिका नगरी अत्यन्त चित्र-विचित्र थी। एक स्थान पर तो उसे स्वर्ग का एक खंड माना गया है। इसी विषय का उल्लेख कालिदास ने भी किया है। कालिदास के काल के बारे में मतभेद हो सकते हैं, किन्तु इतना निश्चित है कि उनके समय में चित्रनिर्माण की अत्यन्त ही प्रभावशाली परम्पराएं थीं। 'मेघदूत', 'अभिज्ञान शाकुन्तल' आदि में हमें कला परम्परा का बड़ी सरलता से ज्ञान हो जाता है। 'मालविकाग्निमित्र' में विदिशा की राजधानी में चित्रशाला का उल्लेख आया है और उस चित्रशाला में मालविका के बने अत्यन्त मनोरम चित्रों का वर्णन आया है।

महाकवि भास ने अपने 'स्वप्नवासवदत्ता' नाटक में चित्रपट्टिका का उल्लेख किया है। गुप्तकालीन भाणों 'पद्मपाभृत्तम' एवं 'पादताड़िकम' में तथा महाकवि शूद्रक के 'मृच्छकटिकम' में उज्जयिनी के विलासितापूर्ण एवं वैभवशाली नगरीय जीवन का वर्णन आया है तथा एकाधिक स्थलों पर चित्रकला की ऊंचाइयों का प्रसंग प्राप्त होता है।

हर्षकालीन कवि एवं महापण्डित बाणभट्ट ने अपने ग्रंथों में उज्जयिनी का अधिक वर्णन किया है और यह उल्लेख किया है कि उस समय अलंकृत चित्रशालाओं में विभिन्न रंगों से रंगे हुए चित्र-रेखा एवं भावप्रधान होते थे। साथ ही बड़ी कुशलता से सूक्ष्मतापूर्ण चित्रों की रचना दीवारों पर की जाती थी। प्राचीन जैन साहित्य में भी कहीं-कहीं उज्जयिनी में चित्रों के अस्तित्व का प्रमाण प्राप्त होता है। वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थों में चित्रकला का उल्लेख के साथ वर्णन

किया है।

चित्रकला के बारे में विशद जानकारी परमारकालीन ग्रन्थों में प्राप्त होती है। इन ग्रन्थों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि परमारकाल में चित्रकला की महती परम्परा थी और इस पर समकालीन कला आचार्यों ने अधिक गहराई से विवेचन किया। दुर्भाग्य से विधर्मियों ने अपने आक्रमणों के द्वारा परम्परा के साक्षों को विनष्ट कर दिया। फिर भी राजा भोज द्वारा लिखित 'समरांगणसूत्रधार' एवं 'युक्ति कल्पतरु' चित्रकला के शास्त्रीय पक्ष को प्रबल रूप से प्रकट करते हैं। धर्मपाल द्वारा लिखित 'तिलकमंजरी' नामक ग्रन्थ परमारकाल में चित्रकला के अस्तित्व पर अधिक बारीकी से प्रासंगिक रूप से प्रकाश डालता है।

'समरांगणसूत्रधार' राजा भोज का वास्तुकला पर लिखा हुआ एक अमर ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के पांच अध्याय चित्रकला के शास्त्रीय पक्ष का विवेचन करते हैं और यह बताते हैं कि सभी ललित कला में चित्रकला का सबसे श्रेष्ठ स्थान है। इस ग्रन्थ के अनुसार चित्रकला के तीन प्रकार होते हैं :–

१–समतल आधार चित्रकला
२–वस्त्र पर अंकित चित्रकला
३–भित्ति पर अंकित चित्रकला

ये चित्ररचना विधान और वर्ग विधान की दृष्टि से विभिन्न प्रकार के होते थे। भोज ने भित्ति चित्रों को बनाने के लिए विभिन्न प्रकार की भित्ति भूमियों की कल्पना की और उसके आधार पर उन आधारों का विधान बताया है, जिनका अनुपालन करते हुए चित्र बनाये जाते थे। विभिन्न मनुष्यों, देवी-देवताओं, यक्ष, किन्नरों, नागों, राक्षसों, विद्याधरों तथा नायिकाओं और दासियों के चित्रों की रचना के मापदण्ड भी प्रस्तुत किये हैं। इसी प्रकार उन्होंने एक स्थान पर तूलिका के पांच प्रकार और उनके प्रयोग की विधियों की विस्तार से चर्चा की है। यह दुर्भाग्य ही कहा जायेगा की परमारकालीन चित्रकला का केवल सैद्धान्तिक पक्ष ही हमारे सामने आता है किन्तु उनका व्यावहारिक पक्ष काल-

कवलित हो चुका है।
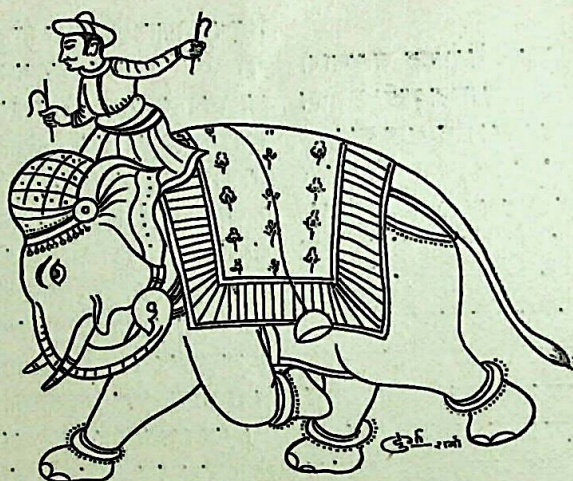
'युक्ति कल्पतरु' में भी चित्रकला की उल्लेखनीय मीमांसा प्रस्तुत की गयी है। इस ग्रन्थ में मालवा के इस महान लेखक ने कर्नाटक की राजकुमारी द्वारा निर्मित विभिन्न राजकुमारों के चित्रों का उल्लेख किया है। 'शृंगारमंजरी' नामक ग्रन्थ, जिसकी कुछ विद्वानों द्वारा मालवा में सर्जना मानी गयी है, में भी भित्तियों एवं वस्त्रों पर चित्रकला बनाने की परम्परा दर्शायी गयी है।

कुल मिलाकर यह कह सकते हैं कि विभिन्न प्राचीन साहित्य सन्दर्भ इस विषय का अत्यन्त ही साक्षात एवं जीवित प्रमाण देते हैं कि मालवा क्षेत्र चित्रकला की दृष्टि से अत्यन्त ही अग्रणी एवं विकसित रहा है। यहां के चित्रकारों में चित्रकला के सैद्धान्तिक, व्यावहारिक, भावात्मक, रसात्मक एवं कलात्मक पक्षों की सुनियोजित एवं विविध विधायुक्त जानकारी थी। जहां राजाओं, सामन्तों एवं श्रेष्ठियों की भरपूर रुचि चित्र-निर्माण में हो तो फिर वहां चित्रकला का अद्वितीय विकास होना सहज ही है। चित्रकार ही नहीं अपितु राजा, रानियां, राजकुमार और राजकुमारियां और यहां तक कि आम औसत आदमी भी चित्रकला में रुचि रखता था और चित्रकला को पल्लवित करना अपना कर्तव्य मानता था।

मुस्लिम आक्रमणकारियों के आगमन ने भारत की ललित कलाओं में विशेषकर मूर्तिकला और चित्रकला पर अत्यधिक कुठाराघात किया, क्योंकि इस्लाम बुत-

(शेषांश पृष्ठ ७९ पर)

हठी विक्रमार्क और वेताल

पुरानी आदत के मुताबिक ही आज भी हठी विक्रमार्क श्मशान भूमि में दाखिल हुआ। लेकिन आज उसने अपनी ड्रेस बदली कर रखा था। आज न तो उसने राजसी आन-बान वाला कोट ही पहना था, न साटन की सलवार। ना ही आज उसने मोजरी पहनी थी। आज उसकी कमर में तलवार भी नहीं थी।

आज उसने कोट, पैंट और टाई पहन रखी थी। आंखों में गॉगल चढ़ा रखा था। हाथों में चमड़े का बैग था और साथ में चपरासी जैसा एक व्यक्ति भी था, जिसने खादी की सफेद पैंट और बुशशर्ट पहन रखी थी, जिसके पैरों में चमड़े की काली चप्पलें थीं और हाथों में कागज़ों का पुलिंदा था। राजा विक्रमार्क पेड़ पर लटके हुए शव के पास पहुंचा। जैसे ही उसने शव को छूना चाहा, शव अदृश्य हो गया। विक्रमार्क की समझ में कुछ भी न आया कि ऐसा क्यों हुआ! वह दूसरे शव की तरफ लपका। यह शव भी विक्रमार्क को देखते ही दूर छिटकने लगा और कुछ दूर जाकर अदृश्य हो गया।

हठी विक्रमार्क ने अपनी जिद तब भी न छोड़ी। वह तीसरे शव की तरफ भागा, जोकि बरगद के पेड़ पर बड़े आराम से लटका हुआ था। इस शव की तोंद किसी मंदिर के गोल गुंबद जैसी लग रही थी। अपनी तोंद की वजह से यह शव जल्दी भाग न पाया।

विक्रमार्क ने इस शव को धर दबोचा और कंधे पर लाद चला। तब शव में स्थित वेताल ने एक ज़ोरदार ठहाका लगा कर कहा, 'राजन्! तुझे पता नहीं, मरघट के शव आज तुझसे दूर और दूर भाग रहे हैं!'

'कथा सुनानी पड़ेगी, इसीलिए न ?'

'नहीं, राजन! ये जो तूने कपड़े पहन रखे हैं, ये किसी इनकम टैक्स इंस्पेक्टर के जैसे लगते हैं। और ये ले, मैं भी चला, मेरा तो करोड़ों रुपये का आयकर चुकाना बाकी है।'

और, सहसा वह तीसरा शव भी अदृश्य हो गया।

—रतीलाल शाहीन

३७, नवपाड़ा, बांदरा (पूर्व) बंबई—४०००५१

□

ग्लोकोमा : आंखों का भयंकर रोग

□

डा. एम. आर. जैन

अंधत्व एक श्राप है स्वयं के लिए परिवार के लिए और राष्ट्र के लिए। और यह श्राप अत्यधिक दुखदायक हो जाता है जबकि वो हमारी अज्ञानता, अनभिज्ञता एवं लापरवाही से हो। ग्लोकोमा एक ऐसा आंखों का भयंकर दृष्टिनाशक रोग है, जिसकी समय पर पहचान एवं उपचार हो जाये तो दृष्टिनाश से पूर्णतया बचा जा सकता है।

ग्लोकोमा सारे विश्व की समस्या है मगर भारत, अफ्रीका एवं एशिया के अन्य देशों में इसकी प्रधानता है। यों तो ग्लोकोमा किसी भी उम्र के व्यक्ति को हो सकता है, मगर ४० वर्ष के पश्चात इस बीमारी की संभावना बढ़ जाती है। ऐसा अनुमान है कि भारतवर्ष में करीब ३ से ५ प्रतिशत व्यक्ति इस बीमारी से ग्रसित हैं और हमारे देश में इस बीमारी को पूर्ण अंधत्व का मुख्य कारण और मूल माना जा सकता है।

ग्लोकोमा क्या है ?

साधारणतया हर आंख में कुछ दबाव (प्रेशर) होता है, जिससे कि आंख का आकार एवं कार्य क्षमता बनी रहती है। इस दबाव को 'इन्टरा ओकुलर प्रेशर' या 'टेन्सन' कहते हैं। इसका नाप-तोल पारे के वजन के हिसाब से किया जाता है। साधारणतया यह प्रेशर १४ से २२ मिलीमीटर पारा बिन्दु होता है। जब यह दबाव २२ मिलीमीटर से ज्यादा बढ़ जाता है तब वह आंखों के अवयवों एवं कार्य क्षमता पर विपरीत असर कर आंखों को अंधा बना सकता है। इस प्रकार बढ़े हुए दबाव को जो आंखों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो, ग्लोकोमा, कालापानी या घोबा के नाम से सम्बोधित करते हैं।
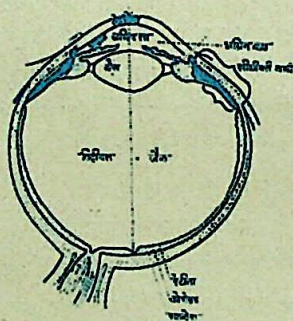
आंखों के साधारण दबाव को बनाये रखने में आंखों के अन्य अवयवों के अलावा सबसे महत्वपूर्ण भाग है सीलीयरी बॉडी का

जो आंखों में लगातार जलीय रस बनाती रहती है। जलीय रस के निर्माण तथा निष्कासन कार्य की गति प्राय: समान होती हैं। यह रस सीलीयरो बॉडी द्वारा बनने के बाद लेन्स के अग्रभाग से प्रवाहित होता हुआ आंख की पुतली के रास्ते अग्रिम कक्ष में प्रविष्ट होता है। यहां यह तरल पदार्थ आंखों के अवयवों को पोषण आहार प्रदान करता है एवं अवांछित व्यर्थ पदार्थों को लेकर अग्रिम कक्ष के कोण की तरफ जाता है। कोण में इस तरल पदार्थ को ट्रेबेक्युलिज के बीच अत्यन्त सूक्ष्म छिद्रों से गुजरकर एक विशेष जलीय रस नाली जिसे श्लेमस केनाल कहते हैं से गुजर कर, कुछ अन्य नाड़ियों को पार कर खून की नाड़ियों में प्रविष्ट करना होता है।

अगर किसी कारणवश जलीय रस ज्यादा मात्रा में बने मगर निष्कासन मात्रा न बढ़े तो आंखों का दबाव बढ़ जाता है। अगर आंखों का पारदर्शक लेन्स फूलकर मोटा हो जाये या अपारदर्शक बन कर (मोतियाबिन्द) फूल जाये तो इस प्रकार का फूला हुआ लेन्स पुतली के रास्ते से जलीय रस के प्रवाह में रुकावट उत्पन्न कर आंखों का दबाव अत्यधिक मात्रा में बढ़ा सकता है। जिन मरीजों का अग्रिम कक्ष एवं कोण बहुत ही कम गहरा हो उनकी आंखों का कोण कई कारणों से अकस्मात ही बंद होकर जलीय रस के प्रवाह में पूर्ण रुकावट उत्पन्न कर प्रचन्ड ग्लोकोमा (धोवा) का कारण बन सकता है। ज्यादातर जो ग्लोकोमा होता है उनमें ट्रेबेक्युलीज के छिद्र धीरे-धीरे संकरे होने के कारण जलीय रस के प्रवाह में बाधा उत्पन्न कर आंख के प्रेशर को बढ़ा देते हैं।

इन मुख्य कारणों के अलावा मोतियाबिंद की शल्य क्रिया के बाद भी कई कारणों से ग्लोकोमा होने की संभावना रहती है। मधुमेह की बीमारी से ग्रसित व्यक्तियों की आंख में ग्लोकोमा होने की संभावना ज्यादा रहती है। कभी-कभी खून या पिगमेंट के कण, खून की नव विकसित नाड़ियां, मोतियाबिंद या कैंसर के कण या अन्य पदार्थ ट्रेबेक्युलीज के छिद्रों में रुकावट उत्पन्न कर ग्लोकोमा का कारण बन जाते है। इस प्रकार के ग्लोकोमा को रोगजनित ग्लोकोमा कहते हैं।

स्टरोइड (कोर्टीसोन) युक्त दवाएं जैसे डेकाड्रोन, पाइरीमोन, माइसीडेक्स बेटनीसोल इत्यादि का प्रयोग लगातार दो-तीन महीने किया जाये तो ये दवाएं ट्रेबेक्युलीज के छिद्रों को संकरा कर किसी भी उम्र के व्यक्ति की आंखों में ग्लोकोमा उत्पन्न कर सकती हैं। जिन लोगों के मां-बाप की आंखों में ग्लोकोमा हो उन्हें स्टरोइड-युक्त दवायों के प्रयोग में विशेष

सावधानी बरतनी चाहिये।

कभी-कभी नये पैदा हुए बच्चों की आंखों में अग्रिम कक्ष के कोण का निर्माण पूर्णतया नहीं होने से आंखों का दबाव बढ़ जाता है। इन बच्चों की आंखों में पानी के बहने की शिकायत रहती हैं एवं आंख का अग्रिम पारदर्शक पर्दा (कोर्निया) साधारण से ज्यादा बड़ा होता है। अगर इस बीमारी की समय पर पहचान एवं उपचार न हो तो बच्चा एक दो वर्ष में पूर्णतया अंधा हो जाता है।

ग्लोकोमा वंशानुगत बीमारी है। जिनके बुजर्गों को यह बीमारी रही हो उन्हें इस बीमारी से विशेष सावधान रहना चाहिये। विशेष कर ४० वर्ष की अवस्था के पश्चात्। यह बीमारी अक्सर दोनों आंखों में होती है—कभी-कभी साथ-साथ और कभी कुछ महीनों या साल-दो साल के अन्तर में।

ग्लोकोमा के लक्षण

मुख्यतया ग्लोकोमा दो प्रकार के होते हैं:

एक तो वह जो अकस्मात एवं बड़े जोर-शोर के साथ आंखों में प्रकट होता है। इस प्रकार के ग्लोकोमा को प्रचण्ड ग्लोकोमा या एक्यूट ग्लोकोमा या घोवा कहते हैं। प्रचण्ड ग्लोकोमा में आंखों एवं सर में तीव्र असहनीय पीड़ा होती है। पलकें सूज जाती हैं। आंखें लाल हो जाती हैं। पुतली धुंधली पड़ फैल जाती है। मरीज को रोशनी में कई रंग दिखायी देते हैं और कुछ घंटों या मिनटों में दृष्टि अति क्षीण हो जाती है। कभी-कभी दर्द इतना असहनीय हो जाता है कि बीमार की हालत चिंताजनक हो जाती है और उसको नींद आना असंभव सा हो जाता है। इस बीमारी को पहचानने या उपचार करने में अगर जरा सी भी देरी हो तो मरीज पूर्णतया अंधा हो सकता है। ऐसी बीमारी युक्त आंख का हकीम, वैद्य, होम्योपैथ या किसी नीम हकीम से इलाज कराने में समय व्यर्थ करना आंखों के पूर्ण अन्धापन का कारण बन सकता है।

प्रचंड ग्लोकोमा से ग्रसित होनेवाली आंखें अकसर छोटी होती हैं और उनकी आंखों का अग्रिम कक्ष कम गहरा होता है। दीर्घ दृष्टि दोष (हाइपरमेट्रोपिया) युक्त आंखों का इस बीमारी का शिकार होने की संभावना ज्यादा रहती है। इन बातों के अलावा भावुक प्रकृति वाले मरीज इस बीमारी के शिकार अधिकता से बनते हैं और शायद यही कारण है कि यह बीमारी औरतों में ज्यादा होती है। छोटी आंख, दीर्घ दृष्टि दोष, छिछला अग्रिम कक्ष, भावुकपन, पुतली का फैलाव (अंधेरे के कारण या किसी दवाई द्वारा), कम रोशनी में लम्बे समय तक पढ़ना इस बीमारी को उकसाने में मददगार होते हैं। कभी-कभी इस प्रकार का ग्लोकोमा मोतियाबिंद के ज्यादा पककर फूल जाने की वजह से भी हो जाता है और यही कारण है कि आधुनिक चिकित्सक मोतियाबिंद का ऑपरेशन उसके पूरा पकने के पहले करना उत्तम

समझते हैं।

दूसरे प्रकार का मुख्य ग्लोकोमा है क्रोनिक सिम्पल ग्लोकोमा या खुला कोण ग्लोकोमा। यह ग्लोकोमा एक चोर की तरह चुपचाप हमारी आंखों में प्रविष्ट करता है और बिना किसी उत्पात के यह ग्लोकोमा आंखों की रोशनी को शनैः-शनैः लुप्त कर देता है। इस बीमारी की सबसे खतरनाक बात है इसका बिना किसी असहनीय लक्षण के आंखों में प्रविष्ट होना। इस बीमारी से ग्रसित व्यक्तियों की आंखों में कभी-कभी भारीपन विविध रंगों का दिखना, थकान या सिरदर्द की शिकायत होती है। कई बार ऐसे मरीजों की पढ़ने-लिखने की दृष्टि ४० वर्ष के पहले ही क्षीण होने लगती है या इन मरीजों के पढ़ने-लिखने के चश्मे हर दो साल की जगह हर ४–६ महीनों में बदलने लगते हैं। बीमारी के बढ़ जाने पर इन मरीजों को शाम के समय चलने-फिरने में असुविधा होती है और कभी-कभी ये लोग किसी चीज से टकरा भी जाते हैं। जब यह बीमारी बहुत बढ़ जाती है, तब इनका दृष्टि क्षेत्र इतना संकुचित हो जाता है कि अपनी आंखों के बिलकुल सामने की तो दूर की चीज भी नजर आ जाती है। मगर आसपास की नजदीक की वस्तु भी दिखायी नहीं देती। इस प्रकार की दृष्टि को 'ट्यूबुलर दृष्टि' बोलते हैं।

ग्लोकोमा और भी दुखदायी हो जाता है, जब कि आंखों में इस बीमारी के साथ-साथ मोतियाबिंद भी विद्यमान होता है। मरीज मोतियाबिंद को ही अपनी दृष्टि-दोष का कारण समझकर उसके पकने का इंतजार करता है और कई नेत्र चिकित्सक भी मोतियाबिंद की ही तरफ अपना ध्यान आकर्षित कर मरीज को अंधा बनाने में भागीदार होते हैं।

स्टरोइड उपार्जित ग्लोकोमा के लक्षण भी क्रोनिक सिम्पल ग्लोकोमा की भांति ही होते हैं। विशेष दुःख तो तब होता है, जब बच्चे या युवक इस ग्लोकोमा की पहचान न होने की वजह से पूर्णतया अंधे हो जाते हैं।

रोगजनित ग्लोकोमा के लक्षण मिश्रित होते हैं और उसको पहचानना अनुभवी नेत्र चिकित्सक का ही कार्य है।

ग्लोकोमा का निदान :

उपरोक्त लक्षणों के अलावा ग्लोकोमा के निदान के लिए विशेष कर क्रोनिक सिंपल ग्लोकोमा के निदान के लिए आंखों की विशेष जांच करना आवश्यक है।

सबसे प्रमुख जांच है आंखों का दबाव नापना। दबाव नापने की क्रिया को 'टोनोमीट्री' कहते हैं और दबाव नापने वाले यंत्र को टोनोमीटर। भारत में साधारणतया दबाव शियोट्ज टोनोमीटर द्वारा नापा जाता है। यह यंत्र अत्यन्त सुविधाजनक छोटा और सस्ता है और नापने की क्रिया भी सरल है, मगर ऐसे मरीजों में जहां प्रारंभिक ग्लोकोमा हो, इस विधि पर पूर्ण भरोसा नहीं किया जा सकता।

(शेषांश पृष्ठ ७८ पर)

पाती : पांच गीत

□ उद्भ्रांत

एक : मन

भेज रहा हूं पाती
मन के सुनसानों में
आहिस्ता रख देना
ढाई आखर झिलमिल
रंगों से लिख देना
ताकि वक्त बन जाय तुम्हारा अपना साथी
भेज रहा हूं पाती

यादों के गुलदस्ते में
इसे सजा देना
धड़कन की सरल
जलतरंग फिर बजा देना
पाती की हो जायेगी तब ठंडी छाती
भेज रहा हूं पाती

दो : कब से

कब से इस पाती में
जंग लग रही है
या इसको भेजो या
फाड़ कर जला दो

झूल रहे बंधु ! क्यों
अनिर्णय के बीच
काल का अहेरी
फिर तुम्हें रहा खींच

कब से यह राख
द्वार पर पड़ी हुई है
या तन पर लेपो या
फूंक कर उड़ा दो

तीन : जीवन

जीवन को पत्र एक भेजा था
आज सांझ आया है

बहुत क्रूर होता यह
यादों का डाकिया
खींच दिया है
'अंतर्देशी' पर हाशिया

समाधान का चंदन
खोज रहा जहां, वहां—
प्रश्नों के सर्पों की छाया है।

चार : रेखाएं

इस नकली पत्र के लिए
तुमको शुक्रिया।
रेखाएं जो तुमने खींची हैं
वे कृत्रिम हैं
जीवन के रंग बिखेरे हैं,
जो छायाभ्रम हैं
इस कोरे पृष्ठ पर

तड़प रहा है उल्टा हाशिया
इस नकली चित्र के लिए
तुमको शुक्रिया।

भावना तुम्हारी जो पहने हूं
वह प्यासी है
छंद अभी सांसारिक नहीं है
संन्यासी है
सेहरे की जगह आज
गाते फिरते हो तुम मर्सिया
इस नकली वस्त्र के लिए
तुमको शुक्रिया।

पांच : मुखड़ा

गीत कभी फिर
लिखने लगो तो बता देना
कोरे कागज हम बन जायेंगे

मुखड़ा जब
वह छाती चूमेगा
रथ का पहिया हम पर घूमेगा
प्रीति-सरीखे
दिखने लगो तो बता देना
मन की सजधज हम बन जायेंगे
कोरे कागज हम बन जायेंगे।

—भारतीय कृत्रिम अंग निर्माण निगम,
जी. टी. रोड, कानपुर—२०८०१६

सतरंगे दौर

□

राधेश्याम 'बंधु'

गुजरा—
बनजारे-सा एक वर्ष और
सिर पर घर उजड़ा-सा सपनों का मौर।

दिन खोये-खोये से—
सांझ अधमरी,
सूरज को निगल रही—
रात अजगरी।

बेमानी—
मौसम के सतरंगे दौर।
गुजरा बनजारे-सा एक वर्ष और।

बांहों में बर्फ हुई—
चाह गुनगुनी,
सांसों में फांस उगे
टेर अनसुनी।

अहसासों—
की कमीज फटी ठौर-ठौर,
गुजरा बनजारे-सा एक वर्ष और।

प्रश्नों की नागफनी,
झूठ-सी बढ़ी,
परिचय की झरबेरी—
राह भर लड़ी।

कसमसा—
रहा है अब मुट्ठी का जोर।
गुजरा बनजारे-सा एक वर्ष और।

—४३/९६ चौक, कानपुर—१, उ. प्र.

□

(पृष्ठ ७५ का शेषांश)

ऐसे मरीजों के लिए गोल्डमेन टोनोमीटरी अति उत्तम है, जो अच्छे नेत्र चिकित्सक के पास ही उपलब्ध हो सकती है।

दूसरी विशेष जांच है 'फन्डसकोपी'। इस जांच क्रिया में ओफथेल्पोस्कोप यंत्र द्वारा आंख के अंदर के पर्दे (रेटीना और ओप्टीक डीस्क) की जांच की जाती है। ग्लोकोमा से प्रभावित होने वाला मुख्य अवयव है ओप्टीक डीस्क। ओप्टीक डीस्क पर होने वाले परिवर्तन से ग्लोकोमा द्वारा आंखों की क्षति की मात्रा का अंदाज लगाया जा सकता है।

तीसरी मुख्य जांच हैं दृष्टि क्षेत्र का परीक्षण (फील्डस रिकोर्डिंग) यह जांच पेरीमीटर एवं जेरमसस्क्रीन द्वारा बड़ी सावधानीपूर्वक की जाती है। इस जांच से इस बात का ज्ञान हो जाता है कि आँखों के दृष्टि क्षेत्र पर ग्लोकोमा से कितनी हानि पहुंची है। स्थापित ग्लोकोमा के मरीज के लिए यह जांच हर दो-तीन महीने में करवाने से बीमारी पर पूर्ण नियंत्रण रखने में मदद मिलती है।

इसके अलावा भी कई प्रकार की जांच की आवश्यकता विशेषकर उन मरीजों में होती है, जहां ग्लोकोमा के निदान में थोड़ी भी शंका हो।

ग्लोकोमा का उपचार

एक बार ग्लोकोमा का निदान हो जाने पर उसका उपचार दवाइयों एवं शल्य क्रिया द्वारा किया जाता है।

एक्यूट ग्लोकोमा का इलाज तुरंत प्रभाव से एवं तत्परता से करना अत्यन्त आवश्यक है।

आंखों में डालने की दवाओं, खाने की दवाओं एक इंजेक्शन द्वारा आंख के दवाव को एवं आंख की लाली को काबू में लाने के बाद शल्य क्रिया अत्यन्त आवश्यक है। इन मरीजों की दूसरी आंख में शल्य क्रिया कर ग्लोकोमा से बचा जा सकता है। मोतियाबिंद उपार्जित ग्लोकोमा का भी यही इलाज है। ग्लोकोमा एवं मोतियाबिंद की शल्य क्रिया एक साथ भी आसानी से की जा सकती है।

सिम्पल ग्लोकोमा वाले मरीजों की आंखों का दवाव दवाओं द्वारा कई सालों तक काबू में रखा जा सकता है, मगर अगर मरीज गांव में रहने वाला हो, दवाई डालने या समय पर नेत्र चिकित्सक से जांच करवाने में लापरवाह हो तो शल्य क्रिया ही उत्तम साधन है।

अलग-अलग प्रकार के ग्लोकोमा में अलग-अलग प्रकार की शल्य क्रियाएं होती हैं, मगर ट्रेबेक्युलेक्टोमी की शल्य क्रिया कई प्रकार के ग्लोकोमा में अति उत्तम शल्य क्रिया मानी जाती है। यह शल्य क्रिया अगर सूक्ष्म शल्य क्रिया यंत्र की सहायता से की जाये तो परिणाम अति उत्तम होते हैं। कई प्रकार के ग्लोकोमा में क्रायो सरजरी की आवश्यकता भी पड़ सकती है।

नेत्र चिकित्सा विज्ञान में लेज़र के पदार्पण के बाद ऐसी आशा जागी है कि

ग्लोकोमा के मरीजों का लेज़र किरणों द्वारा इलाज किया जा सके। समय ही बता पायेगा कि लेज़र शल्य क्रिया की जगह ले पायेगा या नहीं। जनसाधारण से यह अपेक्षा है कि वे ग्लोकोमा के लक्षणों से सजग रहकर अंधता से बचेंगे और ४० वर्ष की उम्र के बाद अपनी आंख की जांच करवाते वक्त आंख के दबाव के बारे में अवश्य जानकारी प्राप्त करेंगे।

—सी, १४१ शास्त्रीनगर, जोधपुर, राजस्थान

□

(पृष्ठ ७० का शेषांश)

परस्ती को कहीं प्रोत्साहित नहीं करता। परिणाम यह हुआ कि मुस्लिम समाज से इन कलाओं का और आगे विकास होना तो ठीक, विद्यमान चित्रकला के प्रमाणों को सुरक्षित और संरक्षित करना कठिन हो गया और इस प्रकार भारत के प्रमुख कला-स्थलों की भांति प्राचीन मालवा के अधिकांश चित्र विनष्ट कर दिये गये। इस कारण परमार काल से मालवा की चित्रकला को क्रमबद्ध एवं वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत करते समय हम निरीह हो जाते हैं। —'अमरकॉटेज', ५३, जाटों का बास, रतलाम-४५७००१

□

लोग खड़े क्यों रहते हैं

बात १९७२ या ७४ की है। कांग्रेस की केन्द्रीय चुनाव समिति की बैठकें चल रही थीं, जिनका कोई सिलसिला नहीं होता। कभी रात में कभी दिन में। कभी शाम, तो कभी सुबह। कभी कांग्रेस कमेटी के दफ्तर में, तो कभी प्रधानमंत्री के निवास पर।

ऐसी ही एक बैठक में भाग लेकर मैं स्व. प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी के साथ कुछ आवश्यक बातें करता हुआ उनके निवास से संसद भवन जा रहा था कि जहां-तहां लोगों की जमा भीड़ उन्हें अभिवादन करती थी और इन्दिराजी उन्हें हाथ जोड़कर उत्तर देती थीं।

नेता के प्रति जनता का और जनता के प्रति नेता का यह विलक्षण प्रेम उन्हें परम्परागत विरासत के रूप में मिला था।

दो-तीन जगहों पर जब ऐसी ही भीड़ का अभिवादन वे स्वीकार कर चुकीं तो संसद-भवन के करीब आने पर उन्होंने कहा—'रोज ही लोग मुझे देखते हैं, फिर क्यों इस प्रकार रास्तों में खड़े हो जाते हैं?'

मैं हंस पड़ा—'आपको रोज देखने वालों की भी यही इच्छा होती है कि और भी करीब से देखें।'

आज नवम्बर ८४ की ३ री तारीख है और उसी पथ पर दिवंगता प्रधानमंत्री की शव-यात्रा में भाग लेकर मैं अभी-अभी अपने कमरे में आकर उन बातों को याद कर रहा हूं। आज भी लोगों की भीड़ उनकी एक झलक पाने को घंटों धूप में खड़ी थीं। अब ये लोग जानते हैं कि आज शायद आखिरी दिन है जब वह झलक मिलेगी, उसके बाद फिर कभी नहीं, कभी नहीं...। —शंकरदयाल सिंह

□

हिन्दी कहानी :

नये क्षितिज

□

डा. पुष्पा जौहरी

दस सितंबर उन्नीस सौ तिरासी,
वह गया आज ! बहुत दूर...

धरती की सतह पर नहीं, आकाश मार्ग से गया है... उसका विमान उड़ते हुए बहुत देर तक देखती रही थी। पिछले दस-बारह दिनों से चल रही अनवरत भागदौड़, आपाधापी.. आज खत्म हो गयी।

०००

प्रेस करके आयी शर्ट्‌स, पैंट, मोजे बनयान, गिन-गिन कर सूटकेस में रख दी गयीं। कुर्ते, पाजामे, नाइट सूट सहेज दिये गये। चादर-तौलियों से बनयान रूमाल तक पर उसके नाम के 'टैग'—'एस' टांक दिये गये।

पिछले आठ-दस दिन से अंधाधुंध बदहवास-सी एक के बाद एक चीजें सहेजती जा रही थी। अपने सदैव के रवैये के अनुसार एक डायरी मेज पर रख ली थी। सोते-जागते, काम-करते, जो भी चीज याद आ जाती, चलते-फिरते उसमें दर्ज कर देती—पेन, बॉल पेन, रिफिल, रबर, पेपर क्लिप, आलपिन, स्टैपलर, कैलकुलेटर...। फिर अवकाश के क्षणों में डायरी में टिक मार्क करती उन सब चीजों को एक बैग में डालती जाती जो विशेषत: इसी हेतु विशेष रूप से निर्धारित किया गया था।

उसके शेविंग सामान के लिए एक सुंदर-सा, बहुत सुंदर-सा लैदर केस निकाल लिया था। तमाम संभावित वस्तुएं—रेजर, ब्लेड, शेविंग क्रीम, छोटा शीशा, यहां तक कि 'ओनिक्स' की बोतल भी उसमें रख दी थी। कोई और समय होता तो इतनी सारी चुनी-चुनाई चीजों की जबरदस्त पैकिंग देखकर वह 'या SSSSS हू' करके खुशी से उछल पड़ता... मुझे याद आता है—

एक बार होस्टल जाते समय इस 'ओनिक्स' आफ्टर शेव लोशन को लेकर कितनी छीना-झपटी हुई थी। मैंने कहा था... बेटा, ये नक्शेबाजी अभी मत करो। विद्यार्थी जीवन में ऐसी एरिस्ट्रोकैसी ठीक नहीं, सादी जीवन-शैली में रह कर पहले अपनी पढ़ाई पूरी कर लो, ऐश करने को तो सारा जीवन पड़ा है।...

तब मेरे दकियानूसी आदर्शों पर वह कितना उत्तेजित हो गया था—'कम ऑन मम्मी, यह सब पुरानी गुरुकुल आश्रम वाली बातों को छोड़िये भी!....' लेकिन आज...?

आज बुझी-बुझी आंखों से गुमसुम वह सब कुछ देखे जा रहा है—निर्लिप्त भाव से। बल्कि मेरे परम उत्साह से सहेजी गयीं तमाम चीजों की छंटनी कर डाली थी उसने... क्या होगा इतनी शर्ट्स का... यह कम्बल मैं नहीं ले जाऊंगा। ये पुलोवर, मफलर, दस्ताने सभी तो हाथ पर टांगने होंगे.. कभी खीजकर कहता... आप तो 'उल्टे बांस बरेली को' वाली बात कर रही हैं। ये चीजें लोग अमेरिका जाकर लेते हैं—मैं उल्टा लेकर जाऊं यहां से? श...

मैं समझाने की कोशिश करती... ये रोजमर्रा की जरूरत की चीजें हैं.. तू पहुंचते ही तो बाजार नहीं भागेगा न? फिर पैसा भी तो चाहिये वहां खरीदने के

लिए।

'ओ. के. मम्मी . . . ओ. के.'। कहकर अन्य-अन्य बातों में उलझ जाता।

और यह पोर्ट फोलियो ?

अब पापा की बारी . . .

पापा, आप नया 'सैमसनाईट' ले लेना, यह आपका वी. आय. पी. देखिए मैं ले लेता हूं . . .

पापा के साथ बैठकर यूनिवर्सिटी का प्रवेश-पत्र, स्कूल से लेकर कालेज तक के सारे सर्टिफिकेट्स, पासपोर्ट, वीसा, बैंक-गारंटी, फोरेन एक्सचेंज . . आदि सब आवश्यक कागजात सम्हाल कर रख लिये थे उसने।

यह सिलसिला तब से ही चल रहा था जब अचानक 'वेनस्टेट यूनिवर्सिटी' से उसका प्रवेश-पत्र आ गया था। उत्तेजना और घबराहट के मिश्रित भावों से मन भर उठा था। केवल १० दिन बीच में हैं—१२ सितंबर को उसे कालेज ज्वाइन करना है। बात यह हुई कि इस वर्ष बंबई में ही उसे एम. बी. ए. में प्रवेश मिल गया था, अतः विदेश जाने की बात दिलो-दिमाग से निकल-सी गयी थी। पासपोर्ट तक बनवाकर नहीं रखा था। प्रवेश-पत्र पाकर मन दुविधा में पड़ गया . . .

मेरा छहफुटा किशोर, उन्नीस वसंतों की अधकच्ची-अधपकी कोपलें सहेजे विदेश जायेगा पढ़ने, यह सोचकर कभी तो उत्साह और गौरव से छाती भर उठती . . . लेकिन कभी तन-मन बोझिल हो उठता . . .

तो अब रोज सुबह नाश्ता बनाने के लिए मेरे नाको दम कर देने, बाथरूम में पहले घुस जाने के लिए छोटे भाई से धक्कमपेल, बहन को चिढ़ा-चिढ़ा कर रुला डालने का वह सिलसिला हमेशा के लिए टूट जायेगा !

अब वह टूटे बटनों, गंदे मोजे, तथा अपने सारे बैल-बोटम पैंटों को अठारह इंची मोहरी में बदल देने के लिए मुझसे नहीं उलझेगा। होस्टल से आने पर बहन द्वारा बनाये उसके मनपसंद व्यंजन—पिजा, नूडल्स, रशन सलाद आदि देखकर धपाधप हाथ मारकर भूखे भेड़िये के समान अपनी जंगली खुशी भी जाहिर नहीं कर पायेगा।

मैं समझ रही थी कि १० दिन में ही अपना देश, अपने स्वजन छोड़ देने की सोचकर अचानक हथौड़े की चोट की तरह एक अप्रत्याशित आघात उसके किशोर मन को भी लगा था। लेकिन जैसे वह जबरदस्त अभिनय किये जा रहा था। भाग-भाग कर सारी आवश्यक औपचारिकताएं पूरी करने में लगा था।

हंसकर कभी मेरी बांह उठाकर हिलाता और खिलवाड़ करके आंख दबाकर पूछता—डाईटिंग चल रही है, मम्मी ? कभी अनायास ही पूछ बैठता—आपका समाज सेवा कार्य—यूनेस्को आदि में कैसा चल रहा है, मम्मी ?

व्यस्तता के बीच, जब भी कभी हम दोनों सामने पड़ जाते, वह ऐसी ही संदर्भ

से कटी-कटी बातें करने लगता । शायद इस संदर्भ (विदेश जाना) को स्वीकारने के लिए उसका अंतर्मन अभी तैयार नहीं हो सका था । तभी तो बीच-बीच में कह उठता था...

'पापा क्यों इतने परेशान हो रहे हैं? अभी नहीं तो जनवरी वाले सत्र में चला जाऊंगा ।' यह उसके अंतर्मन का पलायन हो शायद...

इस डर से कि मेरी उदासी उसके, तथा उसकी उदासी मेरे मर्म को स्पर्श करने न पहुंच जाये, वह मुझे बातों में भुलावा देने की कोशिश करता... अपने को भी भुलावा देने का प्रयास कर रहा था... लेकिन कहां कर पा रहा था वह सफलतापूर्वक यह अभिनय? उसकी शरारतों में जैसे कोई दम ही नहीं रह गया था, उसके हास्य-व्यंग्य की अपनी अनोखी ही शैली जैसे कहीं खो गयी थी । सारी मौलिकता सत्वहीन हो गयी थी उस छरहरे लंबे हास्य अभिनेता की ।

चलने वाले दिन उसके बहुत से दोस्त मिलने आये थे । 'विश' करके चले गये थे । मेरी तनिक भी इच्छा नहीं थी कि अब इने-गिने पलों में वह एक क्षणभर भी मुझसे दूर रहे—मैंने कहा था—'मुझे तुमसे कुछ जरूरी बातें करनी हैं। रात बारह बजे तो तेरी फ्लाइट ही है।'

'प्लीज मम्मी, मोहन की बर्थ डे का प्रोग्राम बहुत दिनों से निश्चित है। अच्छा मैं उन लोगों से 'बाय-बाय' करके ही आ जाऊंगा । खाने-गाने आदि में नहीं बैठूंगा। ठीक, मम्मी?'

मैं स्वयं से ही पूछती—क्या बातें करनी हैं मुझे? कभी लगता विदेश भेजने के पूर्व गांधी जी की भांति वचनबद्ध करूं उसे।

दूसरे क्षण लगता—नहीं, अब समय काफी बदल गया है—परिवेश दूसरा, माहौल दूसरा...और जीवन शैली तथा जीवन मूल्य भी तो कितने बदल गये हैं आजकल।

मैं उसे तथाकथित वचनों में नहीं बांधना चाहती। कहीं नहीं निभा सका तो उसे भी आत्मदाह की पीड़ा होगी और मुझे भी आघात, उल्लंघन, अपमान, सभी कुछ सालेगा। हमारे पारिवारिक संस्कार, हमारा स्नेह, हमारे विश्वास ही उसे दिशा-ज्ञान देंगे, उसकी रक्षा करेंगे । आज्ञोल्लंघन भले ही हुआ हो कभी, परंतु मुझसे झूठ वह कभी भी नहीं बोला, इसका मुझे गर्व है।

पिछले साल होस्टल से आने पर सीधा प्रश्न दाग दिया था मैंने—'सिगरेट पीते हो क्या?'

वह सकपका गया था। सिर नीचा किये चुप रहा।

मैं भी चुप...

सब कुछ स्पष्ट था।

फिर साहस बटोरकर बोला था—'सच बात यह है, मम्मी, होस्टल की तमाम

(शेषांश पृष्ठ ८६ पर)

कृष्णप्रिया राधा.....

□ आत्म प्रकाश शुक्ल

उपासना अधूरी है

रुक्मिणी के पास साहूकार का गुमान है तो
राधिका के पास एक चोर की चिरौरी है
रुक्मिणी के पास पति कृष्ण की निकटता है
राधिका के पास पति होते हुए दूरी है
किन्तु इतिहास के गवाक्ष से मिला है भेद
एक धर्म—न्याय जिसे जानना ज़रूरी है
कृष्ण बिना राधिका की साधना अधूरी नहीं
राधा बिना कृष्ण की उपासना अधूरी है

अथ और इति

कृष्ण बहु वल्लभ अनेक गोपियों के गोप
राधा एकनिष्ठ महाभाव है प्रणति की
बहुविद् कृष्ण इतिहास की धरोहर हैं
राधा शब्द-शक्ति ढाई अक्षरों के कृति की
कोख का दुलार मनुहार सेज का सिंगार
छूटा घरबार और प्रतीति खोयी पति की
वेदना का महासिन्धु सोख हुई केन्द्र बिन्दु
भारतीय संस्कृति के अथ और इति की

.....और रुक्मिणी

मनुहार मोरपंख की

रुक्मिणी के पास ऋद्धि सिद्धि औ समृद्धि है तो
राधिका के पास है प्रसिद्धि प्रेम-पंथ की
रुक्मिणी के पास राजवंश की महानता है
राधिका के पास लघुता है गोप-वंश की
रुक्मिणी के पास पद्‌म शंख चक्र धारी कृष्ण
राधिका के पास पीर बांसुरी के दंश की
रुक्मिणी के पास अधिकार की मुकुट-मणि
राधिका के पास मनुहार मोरपंख की

पदचाप वंशीवट की

एक स्वर्ण पींजरे की पाली हुई सारिका है
एक मुक्त-हंसिनी है मानसर के तट की
रूप की चिरौरी पे खड़ी है निर्वसन एक
एक मर्जाद और लाज घूंघट की
एक गुन-गौरव का मान और गुमान है तो
दूसरी है आन हठयोगियों के हठ की
एक राजनीति की सभीत भाग दौड़ है तो
दूसरी विनीत पद चाप बंसी वट की

—वाणी विहार, अलीगंज, एटा, उ. प्र.

[लेखक की अप्रकाशित पुस्तक 'राधा-रुक्मिणी' खंडकाव्य से]

(पृष्ठ ८३ का शेषांश)

चहल-पहल शोर-शराबे के कारण दिन में पढ़ायी हो नहीं पाती, रात को ही पढ़ता हूं—सारी-सारी रात। चाय-काफी का तो प्रश्न ही नहीं, पढ़ते-पढ़ते ऊब जाने, थक जाने या नींद भगाने के लिए कुछ 'डाय-वर्शन' तो चाहिये—मैं क्या करूं? दूसरा विकल्प भी तो नहीं।'

उसकी सहज, सरल स्पष्टवादिता पर मेरा मन भर आया था। सोचती—ठीक ही तो कहता है किसी हद तक। मैं भी तो रवि की तरह रात-रात भर जागकर उसे चाय, मठरी, सेंव, सींगदाना, वेफर्स आदि नहीं दे सकती थी परीक्षा के उन दिनों में...

मुझे आहत देख गले में लिपट जाता—'आपके पास आ जाऊंगा तब सब बंद—सच, मम्मी।'

जाते समय एअर पोर्ट जाने की बात पर उसने अपने सब दोस्तों को रोक दिया था—सिर्फ मम्मी-पापा, दीप्ती और रवि।

गाड़ी में सामान रखने के बाद वह सबसे पहले पीछे की सीट पर गिर गया था टूटे वृक्ष की भांति। वैसे जब से उसने अठारह पार किये हैं, हम सब जहां भी जाते गाड़ी वही चलाता था, पापा के मना करने पर भी। परंतु आज... वह एकदम बदला-बदला है, बुझा-बुझा।

आदतन आगे की सीट की ओर न आकर आज मेरे हाथ भी स्वत: पीछे का द्वार खोलते हैं—मैं उससे एकदम सटकर बैठ जाती हूं।

और कोई समय होता तो कार में बैठने के चुनाव पर कितनी जिद्दमजिद्दी होती थी, इन बच्चों में, आज सब कुछ जैसे अनायास ही होता चला जा रहा है—स्वचालित।

कार भागी जा रही है... सब मौन हैं, कोई कुछ नहीं बोल रहा। एक अजीब-सी खामोशी—

अनुभूति के चरम उत्कर्ष पर शायद अभिव्यक्ति मौन हो जाती है।

चलने के कुछ पूर्व चलते-फिरते, काम करते मैंने उसे कह दिया था—'देख दीपू, अब तू दूर जा रहा है—बहुत दूर—बहुत दिनों के लिए। मैं तुझसे कुछ कहने, तुझे देखने वहां नहीं आऊंगी... तू कह दे एक बार कि तू सिगरेट नहीं पीयेगा।'

झूठा आश्वासन शायद वह नहीं देना चाहता था। वह चुप रहा। मेरे कान प्रतीक्षा करते रहे कि अब बोले, अब बोले।

तबसे ही न जाने कैसी खामोशी ने जकड़ लिया था मेरी जबान को—जैसे मेरे मुंह में शब्द ही नहीं रहे थे। सच कह दूं तो मैं उससे नाराज नहीं थी उस समय, बल्कि तसल्ली यह थी कि झूठे आश्वासन देने का दु:साहस तो नहीं किया उसने, यह ज्ञान लेकर जा रहा है विदेश—यह सोचकर मैं संतुष्ट थी। ऐसे निर्णयात्मक क्षणों के प्रति मैं सदा से कुछ उदार रही हूं बच्चों के साथ। उन्हें थोड़ी ढील दी है—इतना

नहीं खींचा है कि आन टूट जाये और फिर सीमा-रेखा का अतिक्रमण कर वह 'कुछ भी' करने के लिए स्वतंत्र हो जाये।

'कोई कुछ बोलिये तो...' दीप्ती का स्वर कौंध गया था कार की निस्तब्ध धुंध में तब..:

उत्तर में शायद मैंने दीपू का हाथ अपने हाथ में ले लिया था—कोई नहीं बोला था।

वह एकदम भावुक हो गया था... मेरी गोद में बिलख उठा था... 'ऐसे ही भेजेंगी मुझे... मम्मी?'

मैं एकदम विचलित-विह्वल हो उठी थी। क्या कर रही हूं मैं, क्या हो गया है मुझे, मेरी वाणी कहां खो गयी है? बेटा, इतनी दूर—सात समुंदर पार जा रहा है और इन अमूल्य गिने-चुने क्षणों को मैं यूं ही लुटाये दे रही हूं खामोशी में, बिना बातचीत किये! क्यों अपनी स्नेह-प्लावित आशीषों से उसका मार्ग सहज नहीं कर देती। मेरा ममत्व चीख उठा था।

इन्होंने भी धीरे से कान में फुसफुसाया था—'बात करो न उससे—जा रहा है वह।'

एक झटके से जैसे मेरी तंद्रा टूटी हो... एकदम उसे चिपका लिया था सीने से—'नहीं बेटे, ऐसा नहीं करते'— उसके आंसू पोंछते हुए कहा था मैंने।

अठारह वर्ष पूर्व गोद में चिपके दीपू का चित्र सामने उभर आया था—परंतु उस समय केवल दीपू रो रहा था—हम दोनों नहीं।

एअर पोर्ट पर उसके चाचा-चाची आ गये थे, विदाई देने। लॉबी में यूं ही पापा-चाचा की बातें सुन रहा था। मेरी ओर देखता ही नहीं था।

जब उसकी फ्लाईट का नाम और नंबर पुकारा गया और उसे होश आया तो दौड़कर मेरे पास आया... गले से लिपटकर फफक पड़ा... 'मम्मी...'

छोटे बच्चे के समान चूम-चूमकर, बालों में उंगलियां उलझाकर उसे संयत किया।

'जा मेरे बच्चे, जहां भी रहे, मां भगवती तेरी रक्षा करें, तुझे सुबुद्धि दें,' मेरा मन बुदबुदा उठा।

धीरे से दोनों हाथों में वी. आय. पी. उठाये, कंधों पर तमाम कपड़े डाले, नीची गर्दन किये वह 'चैक इन' के लिए अन्दर चला गया।

मैंने देखा, मेरा दुबला-पतला-लंबा शैतान चुलबुला बेटा सबकी नजरें बचाकर आंसू पोंछे जा रहा था।

आह! वे शैतानियां और ये आंसू! सदा हंसते रहने वाला ये निर्द्वंद्व निश्चिंत मस्तमौजी, उद्दंड, रो भी सकता है क्या?

हम लोग टैरेस पर बेचैनी से यहां-वहां झांकने की कोशिश कर रहे हैं कि कहीं से उसकी एक झलक और मिल जाये। थोड़ी हलचल के बाद जोर की गड़गड़ाती आवाज़ आने लगी थी, जो अंदर कलेजे तक धंसी जा रही थी।

मेरा बेटा भी उड़ा जा रहा है नये क्षितिज की ओर... मैं बेबस लुटी-सी आकाश की ओर देखे जा रही थी।

—२/११ गांधी अस्पताल, परेल, बम्बई-१२

□

शान्ति का नोबेल पुरस्कार जीतने वाले

बिशप टूटू : काले लोगों की आवाज़

□ अरुण गांधी

१९८४ का शांति का नोबेल पुरस्कार जीतने वाले बिशप डेस्मांड टूटू को दक्षिण अफ्रीका के बहुसंख्यक काले लोगों के महात्मा गांधी और उनकी ओर से बोलने वाली सशक्त आवाज के रूप में जाना जाता है। ५० वर्षीय टूटू ने हाल ही में कहा था, 'बाइबिल में कहा गया है, अपने पड़ोसियों से प्रेम करो। मगर अल्पसंख्यक गोरे ईसाइयों का हम बहुसंख्यक काले ईसाइयों के प्रति जो शत्रुतापूर्ण और दमनात्मक रुख है, उसे देखते हुए, मुझे लगता है कि बाइबिल की इस सीख का आजकल कोई अर्थ नहीं रह गया है।'

'यह एक अविवाद्य तथ्य है कि हम जो पीड़ित और गुलाम हैं, आज़ाद होंगे। इस बारे में मेरे मन में कोई संदेह नहीं है। इतिहास, और विशेष रूप से दक्षिण अफ्रीका का इतिहास इस तर्क का समर्थन करता है। हमारे मालिक बने बैठे, आततायी गोरे लोगों के सामने सवाल सिर्फ़ यह है कि वे हमें शांतिपूर्वक आज़ादी देंगे, या अपना और हमारा खून बहाकर। उन्हें हिंसा और अहिंसा इन दोनों विकल्पों में से एक को चुनना है,' ये शब्द हैं, १९८४ का शांति का नोबेल पुरस्कार जीतने वाले, दक्षिण अफ्रीका के बहुसंख्यक काले ईसाइयों के नेता बिशप डेस्मांड टूटू के, जिन्हें राष्ट्रसंघ के एक भारतीय अधिकारी ने 'महात्मा' की उपाधि प्रदान की है।

स्वयं टूटू महात्मा गांधी को आदर की दृष्टि से देखते हैं, और उनके एक कथन का उल्लेख करते हुए कहते हैं, 'महात्मा गांधी ने एक बार कहा था कि अहिंसा कायर लोगों के लिए नहीं है, मगर यदि वे उसका प्रयोग नाज़ी जर्मनी में करते, तो उन्हें सफलता नहीं मिलती। लेकिन, हम अंतिम उपाय के रूप में हथियारों से लड़कर भी अपनी आज़ादी उनसे छीनने के लिए तैयार हैं, जिन्होंने अन्यायपूर्वक आज़ादी के हमारे जन्मसिद्ध अधिकार को दबा रखा है।'

इस बात के आसार नज़र आ रहे हैं कि रंगभेद में विश्वास करने वाली दक्षिण अफ्रीका की सरकार संभवतः बिशप टूटू को स्टॉकहाम जाकर, नोबेल पुरस्कार प्राप्त

करने की अनुमति प्रदान नहीं करेगी, क्योंकि उसे पूरी आशा है कि टूटू पुरस्कार प्राप्त करते समय, जो भाषण देंगे, उसमें विश्व-जनमत की उपेक्षा करके अपनायी गयी दक्षिण अफ्रीका की सरकार की रंगभेद की घिनौनी नीति की निंदा किये बिना नहीं रहेंगे।

टूटू से पूर्व, १९६८ में अफ्रीकन नेशनल कांग्रेस के नेता अल्बर्ट लुथूली को भी शांति का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया था, किन्तु उन्हें तत्कालीन दक्षिण अफ्रीका की सरकार ने स्टॉकहाम नहीं जाने दिया था।

टूटू भी लुथूली की भांति काले लोगों के उदार नेता हैं, लेकिन दक्षिण अफ्रीका की सरकार इन उदार नेताओं को महत्त्व नहीं देती, और न कभी उनके साथ बातचीत या समझौता करने के लिए तैयार रही है। टूटू दक्षिण अफ्रीका के काले लोगों के संभवतः अंतिम उदार नेता हैं। उनके पश्चात्, नेतृत्व की बागडोर उग्रवादी नेताओं के हाथ में आ जायेगी, जो अपने अनुयायियों को गोरे शासकों के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह के लिए उकसाते रहते हैं, और जिनकी गतिविधियों से भयभीत होकर, दक्षिण अफ्रीका की सरकार ने काले लोगों पर अत्याचार की कार्रवाइयां और तेज कर दी है। बहाना यह है कि वे उग्रवादियों का सफ़ाया कर रहे हैं।

गुरु द्वारा बताये गये मार्ग पर

टूटू फादर ट्रेवर हडलस्टोन को, जो
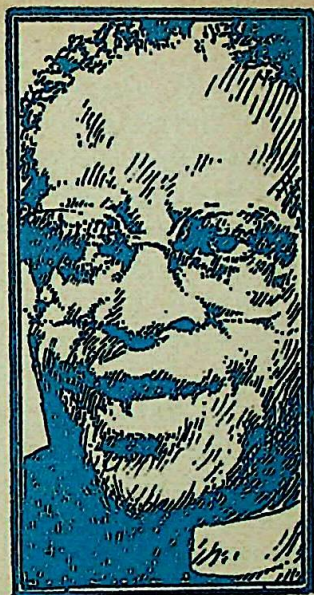
बिशप डेस्मांड टूटू

१९४३ से १९५५ तक जोहान्सबर्ग के गरीब लोगों के इलाके सोफियाटाउन के चर्च के बिशप थे, अपना गुरु मानते हैं। फादर हडलस्टोन की 'राजनीति' से नाखुश होकर, दक्षिण अफ्रीका की सरकार ने उन्हें इंग्लैण्ड वापस भेज दिया था।

फादर हडलस्टोन दक्षिण अफ्रीका के काले लोगों पर हो रहे ज़ोर-जुल्म की ओर विश्व का ध्यान लगातार आकर्षित करते रहते थे। उनके लेखों और भाषणों का मुख्य स्वर होता था, 'जो भी व्यक्ति दक्षिण अफ्रीका में काले लोगों के साथ हो रहे अपमानों को एक बार भी देख लेगा, वह कभी चुप होकर नहीं बैठ सकेगा।' एक बार जब द. अफ्रीका की सरकार ने सोफिया-

टाउन की गंदी वस्ती को नष्ट करने की कोशिश की थी, तो फादर हडलस्टोन ने ही काले लोगों को संबोधित करते हुए कहा था, 'उठो, और इन आततायियों से लड़ो।' लोग उठे थे, लड़े भी थे, और मारे भी गये थे, मगर गोरी सरकार पर कोई भी प्रभाव नहीं हुआ था।

आज टूटू भी अपने गुरु फादर हडलस्टोन की कुंठा से ग्रस्त हैं। उन्होंने अभी हाल में कहा था, 'बाइबिल में कहा गया है कि 'अपने पड़ोसियों से प्रेम करो।' मगर अल्पसंख्यक गोरे ईसाइयों का हम बहुसंख्यक काले ईसाइयों के प्रति जो शत्रुतापूर्ण और दमनात्मक रुख है, उसे देखते हुए, मुझे लगता है कि बाइबिल की इस सीख का आजकल कोई अर्थ नहीं है।'

टूटू का बिशप बनने का कभी कोई इरादा नहीं था। विद्यार्थी-जीवन में उनकी आकांक्षा एक डॉक्टर बनने की थी, लेकिन अपने माता-पिता की निर्धनता के कारण उनकी यह महत्त्वाकांक्षा कभी पूरी नहीं हो पायी। शिक्षा पूरी करने के बाद, वे एक अध्यापक बन गये, मगर जब अफ्रीकी सरकार ने काले लोगों के लिए तृतीय श्रेणी की बंटू-शिक्षा-पद्धति आरंभ की, तो उन्होंने अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया, कारण वे इस अपमानजनक शिक्षा-पद्धति का अंग बनना पसंद नहीं करते थे।

काले लोगों के प्रवक्ता

विद्यार्थी जीवन में ही टूटू फादर हडलस्टोन के संपर्क में आ गये थे। फादर हडलस्टोन के सौजन्य से ही उन्हें इंग्लैण्ड जाकर ईसाई धर्मदर्शन की शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला, और वे एक प्रशिक्षित पादरी बनकर स्वदेश लौटे। लौटने पर उन्हें जोहान्सबर्ग का डीन नियुक्त किया गया।

बिशप टूटू चाहते तो गोरे बिशप की जी-हुजूरी करके, काले लोगों से दूर रहकर, शानो-शौक़त और आराम की ज़िंदगी बिता सकते थे। मगर उन्होंने उन्हीं काले लोगों के साथ रहना पसंद किया, जिनके बीच उनका जन्म हुआ था। वे उनके साथ अपनी चिर-परिचित सेवेतो नाम की गंदी वस्ती में रहने लगे।

काले लोगों के प्रवक्ता बनने का सम्मान अर्जित करने के लिए टूटू को काफ़ी समय लगा। आरंभ में उनके अनुयायी पूरी तरह विश्वस्त नहीं थे कि वे उनके प्रति वफ़ादार रहेंगे या नहीं, लेकिन जब उन्होंने देखा कि बिशप टूटू सच्चे मन से उनका उद्धार करना चाहते हैं, तो उन्होंने बिशप महोदय को एकमत से अपना नेता मान लिया, और तब से उनके अनुयायियों की संख्या निरंतर बढ़ ही रही है।

लोग तो उनके साथ हैं, लेकिन सरकार के कठोर रुख को देखकर वे कभी बहुत निराश और हताश हो जाते हैं। पिछले दिनों, डर्बन में आयोजित एक सभा में अपने अनुयायियों को संबोधित करते हुए, उन्होंने भाव-विह्वल स्वर में कहा था, 'चारों तरफ अंधेरा है, और प्रकाश की

कोई भी किरण नज़र नहीं आती। मुझे कुछ नहीं सूझता कि मैं क्या करूं, लेकिन ... एक न एक दिन, यह अंधेरा दूर तो होगा ही।'

इस भाषण के क़ाफ़ी समय पहले, वे दक्षिण अफ्रीकी काउंसिल ऑफ चर्चेज के सदस्यों के साथ द. अफ्रीका के तत्कालीन प्रधान मंत्री बोथा से मिले थे कि शायद बातचीत के ज़रिये शांतिपूर्ण समझौते की कोई राह निकल आये। मगर आशा के अनुरूप, ऐसी कोई राह नहीं निकली, क्योंकि दोनों पक्ष अलग-अलग भाषाएं बोल रहे थे। गतिरोध आज भी ज्यों-का-त्यों क़ायम है।

काले लोगों के प्रवक्ता के रूप में टूटू चाहते हैं कि दक्षिण अफ्रीका की सरकार, अपनी रंगभेद की नीति को समाप्त करे, और काले लोगों को गोरे लोगों के समान मानकर, उन्हें गोरे लोगों के समान अवसर प्रदान करे। उधर, दक्षिण अफ्रीका की सरकार इस समस्या को एक अलग ही नज़रिये से देखती है। उसका कहना है कि समस्या रंगभेद की नीति नहीं, काले लोगों में आतंकवाद के प्रति बढ़ती हुई रुचि की है, जिसे दूर करने के लिए चर्च को आगे आना चाहिये। जब बिशप टूटू सरकार से पूछते हैं कि वे ऐसे लोगों को प्रेम, शांति और अहिंसा का पाठ कैसे पढ़ा सकते हैं, जिन्हें क़दम-क़दम पर अपमानित और प्रताड़ित किया जाता है, तो सरकार के पास उनके इस सवाल का जवाब मौन के सिवाय कुछ और नहीं होता।

भगवान की कृपा का ही सहारा

जिन बोथा से बिशप टूटू ने तब बात की थी, जब वे प्रधान मंत्री थे, वे आजकल दक्षिण अफ्रीका के राष्ट्रपति हैं। यह पूछे जाने पर कि क्या वे राष्ट्रपति बोथा से दुबारा मिलकर उनसे रंगभेद की नीति को समाप्त करने का अनुरोध करेंगे, टूटू ने कहा था, 'मूसा फरौआ से मिलने एक बार नहीं, कई बार गये थे। हमें अब भगवान की कृपा का ही सहारा है, और भगवान की कृपा कब किस पर बरस जायेगी, यह कहना किसी के लिए भी कठिन है।'

शांति के प्रति बिशप टूटू की गहरी आस्था का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि दिल को तोड़कर रख देने वाली असफलताओं और निराशाओं के बावजूद, वे अपनी इस आस्था को, जब भी अवसर मिलता है, व्यक्त करते रहते हैं, इस आशा से कि शब्द किसी को जान से नहीं मार सकते, उल्टे गोलियों को रोककर, लोगों की प्राण-रक्षा कर सकते हैं।'

द. अफ्रीका की सरकार बिशप टूटू से भी उतनी ही परेशान है, जितनी फादर हडलस्टोन से थी। यह सरकार, फादर स्टोन को निष्कासित करने में तो सफल हो गयी थी, लेकिन बिशप टूटू से छुटकारा पाना उसके लिए इतना आसान नहीं है। वह बिशप टूटू के खिलाफ़ उन बर्बर तरीकों से भी काम नहीं ले सकती, जिनका प्रयोग

उसने काले लोगों को छोटे-मोटे नेताओं को दबाने के लिए किया था, क्योंकि टूटू को यूरोप और अमरीका के चर्च-अधिकारियों द्वारा आदर से देखा जाता है।

बिशप टूटू विश्व भर में यह प्रचार करते आ रहे हैं कि अगले ५–१० वर्षों में दक्षिण अफ्रीका पर काले लोगों का राज्य होगा। दक्षिण अफ्रीका की वर्तमान सरकार इस प्रचार से बेहद परेशान है। उसने टूटू को परेशान करने के लिए यह जांच शुरू की कि 'साउथ अफ्रीकन काउंसिल ऑफ चर्चेज' को, जिसके सचिव बिशप टूटू हैं, धन कहां से आता है? जांच से पता चला कि काउंसिल के खाते में १०,०००,००० डॉलर की जो राशि जमा है, वह उसे तब प्राप्त हुई थी, जब बिशप टूटू का उससे कोई संबंध नहीं था। सरकार ने उनसे यह भी जानना चाहा कि उनके पास अपने घर को सजाने के लिए १५,००० डॉलर कहां से आये? यह जांच-कार्य चल ही रहा था कि प. जर्मनी के एक व्यक्ति ने रहस्योद्घाटन किया कि यह राशि उन्होंने टूटू को, उनके कार्य से प्रसन्न होकर भेजी थी। सरकार उनके अनुयायियों में फूट के बीज बोने में भी असफल रही है। नोबेल पुरस्कार की घोषणा के बाद, उनके अनुयायियों की संख्या और अधिक बढ़ गयी है, और वे लोग यह मानने लगे हैं कि टूटू के अलावा, कोई अन्य काला नेता उन्हें आज़ादी नहीं दिला सकता।

बिशप टूटू हृदय से अपने अनुयायियों की उनमें आस्था के प्रति कृतज्ञ हैं, और अपनी इस आशा को बार-बार मुखर करते रहते हैं कि दक्षिण अफ्रीका के काले लोगों को स्वतंत्रता शीघ्र ही मिलकर ही रहेगी, भले ही उनको इसकी भारी क़ीमत क्यों न चुकानी पड़े। उन्हें इस बात का इतना दुख नहीं है कि गुलामी की वजह से काले लोगों की आर्थिक और राजनैतिक स्थिति पर आघात पहुंच रहा है, बल्कि इस बात का है कि वे उनके इस उपदेश पर विश्वास नहीं करते कि वे भी अन्य मानवों की भांति भगवान की संतान हैं।

'मैंने जो भविष्यवाणी की है, वह शीघ्रातिशीघ्र अवश्य पूरी होगी,' बिशप टूटू बार-बार अपने निराशांध अनुयायियों को यही आशा दिलाते हैं। और जिस दिन मेरी यह भविष्यवाणी पूरी हो जायेगी, उस दिन मुझ पर शायद यह इल्ज़ाम लगाया जायेगा कि मैंने ऐसी भविष्यवाणी क्यों की जो पूरी हो गयी।'

['संडे आबजर्वर' से साभार]

☐

मारकोनी का एक और प्रसंग है। एक बार वह आयरलैंड गये। उनके आने की खबर सुनकर अखबारों के प्रतिनिधि उनसे मिलने पहुंचे, लेकिन मिल नहीं सके, क्योंकि उन्हें फ़ुरसत ही नहीं थी। बाद में पता चला कि एक छह वर्ष की बच्ची अपनी टूटी हुई गुड़िया उनके पास लायी थी जिसकी मरम्मत करने में मारकोनी देर तक व्यस्त रहे।

☐

अनोखी रस्में विवाहों की

□ सन्तोष

विवाह शब्द का कोई ऐसा वास्तविक एवं सभी देश, काल एवं जाति पर समान रूप से लागू होने वाला अर्थ नहीं दिया जा सकता, क्योंकि विवाह प्रत्येक जाति के अपने सामाजिक नियमों एवं उस देश की अन्य परम्पराओं के अनुसार होते हैं। सामान्यतः विवाह शब्द से स्त्री-पुरुष के आजीवन वन्धन का ही बोध होता है, फिर भी विश्व की विभिन्न जातियों में विवाह के सम्बन्ध में विचित्र प्रकार की रीतियां प्रचलित हैं। आइये, अब देश-विदेश के कुछ विवाह के अजीबो-गरीब तौर-तरीकों से आपका परिचय करायें :

नाइजीरिया की कई जातियों की महिलाएं, जो शादी करके अपनी स्वतंत्रता गंवाने के लिए तैयार नहीं होतीं, जिन्हें बच्चों को जन्म देना भी अच्छा नहीं लगता, पर जो अपने कुल के वारिस की इच्छा रखती हैं, वे किसी अन्य गरीब महिला के साथ बाकायदा विवाह करती हैं। अपनी पत्नी को सब सुख-सुविधाएं प्रदान करती हैं और अन्य पुरुषों के साथ उनके मिलने-जुलने पर कोई प्रतिबंध नहीं लगातीं। परिणामतः जो बच्चा उस स्त्री-पत्नी के पैदा होता है वह पति-महिला का ही माना जाता है। बच्चे का वह पितृवत लालन-पालन करती है और उस बच्चे के नाम के साथ पितृ-स्थान में भी पति-महिला का ही नाम जोड़ जाता है।

पश्चिमोत्तर तिब्बत के रहने वाले लद्दाखियों में विवाह बड़े विचित्र ढंग से होता है। वर शादी के लिए जब कन्या के घर जाता है, तब कन्या-पक्ष के लोग इधर-उधर छिपकर बैठे रहते हैं। जैसे ही वर घर में प्रवेश करता है, वैसे ही वे लोग उस पर पिल पड़ते है और घूंसों से उसे मारते-पीटते हैं। उनसे बचता-बचाता वर घर के अन्दर घुस जाता है, तो घर की महिलाओं का झुंड उसे घेर लेता है। वहां से बचने पर फिर छोटी-छोटी लड़कियां वर की पिटाई करती हैं। इस शुभ कार्य में सहयोग देने के लिए पड़ोसी पहले से ही प्रतीक्षारत रहते हैं। लड़कियों से घिर जाने पर वर को उस समय कुछ दान-दक्षिणा देनी पड़ती है। शाम के समय कन्या और वर को एक थाली में ही खाना खिलाया जाता है। वर अपनी वधू को लेकर अपने घर आ जाता है। वर के प्रत्येक भाई का वधू पर अधिकार होता है, परन्तु विवाह के कुछ दिनों तक उसका प्रधान पति ही एकमात्र स्वामी होता है और तब क्रम से छोटे भाइयों का नंबर आता है। सारे भाइयों की पत्नी बनने पर यह वधू पर निर्भर है कि वह जिसे चाहे, अपना कृपापात्र बनाये।

न्यू कैलीडोनिया में वर को चुनने का कार्य कन्या करती है। वहां स्वयंवर की सी प्रथा है। कन्या के सामने वीस-पच्चीस लड़के एक लाइन में खड़े हो जाते हैं। वे अपने हाथों में नारियल की गिरी का एक टुकड़ा रख लेते हैं। जिस किसी का टुकड़ा कन्या खा ले, उसी से उसका विवाह हो जाता है। वर-पक्ष वाले कन्या-पक्षवालों को एक मोटी रकम दहेज में देते हैं।

हंगरी के कई गांवों में पति की तलाश में निकलने की प्रथा है। किसी खास दिन गांव की कुछ कुमारी लड़कियां एक हाथ में फूल और दूसरे हाथ में भोजन की सामग्री लेकर पास के खेत में जाती हैं। लड़की वहां स्वयं अपने हाथ से अपने मनपसंद युवक को भोजन खिलाती है। जब वह युवक खा-पीकर तृप्त हो जाता है तब यदि उसकी इच्छा होती है तो वह मीठी रोटी का एक टुकड़ा लड़की को दे देता है। इस क्रिया से यह स्पष्ट हो जाता है कि लड़के को लड़की पसन्द आ गयी है। इसके बाद दोनों में विवाह की बात पक्की हो जाती है।

भारत के असम राज्य के अबेंग जाति में विवाह की प्रथा बड़ी विचित्र है। अक्सर लड़कियां ही लड़कों को चाहती हैं। अपनी इस चाह को वे जाकर अपने भाई, मामा या उनके लड़कों को बतलाती हैं, तो वे उस लड़के को उठाकर आधी रात में हाथ-पैर बांधकर पकड़ लाते हैं। लड़का अवसर मिलते ही भागकर जंगलों में छिप जाता है। इस प्रकार तीन बार भागने की उसे छूट है। चौथी बार अगर वह भागा, तो यह समझा जाता है कि उसे यह संबंध पसंद नहीं, अन्यथा उसे स्वीकृति माना जाता है। स्वीकृति की दशा में दावत होती है। लड़की की सहेलियां विवाह के गीत गाती हैं और आग जलाकर सूर्य की पूजा की जाती है।

'घोटुल' का नाम तो आप सबने अवश्य सुना होगा। इसी को असम व उड़ीसा में 'घुमकुरिया' तथा बिहार में 'एरपा' या 'जोण' के नाम से पुकारते हैं। कुछ आदिम जातियों में एक ऐसी बड़ी झोपड़ी का निर्माण इस उद्देश्य से किया जाता है कि जिसमें गांव के अविवाहित युवक-युवतियां रात में रहें और अपने जीवन साथी का चुनाव कर सकें। प्रत्येक आदिम जाति के गांवों में ऐसी झोपड़ियों की रचना करना अनिवार्य है।

'घोटुल गृह' में माता-पिता अपने लड़के-लड़कियों को प्रसन्नतापूर्वक भेजते हैं। ऐसा न करना जातीय अपराध माना जाता है। यहां शिष्टता एवं प्रबन्ध की बड़ी सुन्दर व्यवस्था होती है। 'घोटुल' की व्यवस्था एवं रखवाली के लिए एक 'कोटवार' और 'आरसर' होता है, जो सब कार्यों को देखता है। 'घोटुल' का हरेक कुमार सदस्य 'चेलिक' और कुमारी 'मोटियारी' कहलाती है। 'घोटुल' में पहुंचते ही चेलिक व मोटियारी एक-दूसरे का स्वागत करते हैं और फिर सब मिलकर

उसकी सफाई करते हैं। जाड़े के दिनों में आग की धूनी बीच में जला दी जाती है और फिर उसके सहारे काफी रात तक 'घोटुल' का कोना-कोना ढोल, ढिमकी और नगाड़ों की ध्वनि से गूंजता रहता है।

जब काफी रात हो जाती है और सारा गांव सुख-सपनों में विचरने लगता है, तब एक-एक 'मोटियारी' एक 'चेलिक' के साथ (जो पहले से तय होते हैं) बड़े हाल में सो जाते हैं। जब कोई 'मोटियारी' और 'चेलिक' अपना जीवन-साथी चुन लेते हैं तो इसकी सूचना 'घोटुल के 'आरसर' को दे दी जाती है। विवाह के लिए निश्चित दिन नियत किया जाता है। विवाह के दिन 'मोटियारी' विशेष शृंगार कर उपस्थित होती है और वह मंगेतर को छोड़ कर 'घोटुल' के सारे सदस्यों को तम्बाकू बांटती है। 'घोटुल' की सखियां उसके मंगेतर के बालों में कंघी करती हैं। उस समय प्रत्येक 'मोटियारी' को एक-एक नयी कंघी भेंट में दी जाती है। इसके पश्चात् विवाह सम्पन्न होता है। विवाह पश्चात् वे लोग एक भी दिन 'घोटुल' में नहीं रह सकते हैं।

भारतीय आदिम जातियों में एक जाति है–'कोरक' जो मूलतः आंध्र प्रदेश व मध्यप्रदेश के निवासी हैं। इन जातियों में विवाह के तरीके अपने आप में निराले होते हैं। विवाह योग्य लड़के का पिता लड़की की तलाश करता है, जिसे 'बलि ढूंढ़ना' कहते है। मनचाही वधू तलाशने के बाद सगाई हो जाती है। विवाह के पूर्व लड़के के पिता को दहेज देना होता है। वास्तव में यह लड़की की कीमत होती है। इस कीमत के साथ गांव की पंचायत को भी कुछ, लड़के वालों को देना पड़ता है।

भारत की उत्तरी-पूर्वी सीमाओं पर रहने वाले 'नागा' लोगों की जातियों में विवाह की अलग-अलग प्रथाएं हैं। वहां उस व्यक्ति को अधिक महत्ता मिलती है जिसने दो-चार मनुष्यों का खून किया हो या जो शिकार में प्रवीण हो। साधारणतः ऐसे वर को चुनने में कन्या स्वतंत्र होती है, बाद में मां-बाप की स्वीकृति ली जाती है। लड़के का पिता कुछ मूल्यवान भेंटों को लेकर लड़की के पिता के पास जाता है। भेंटों को स्वीकार करने पर विवाह की रस्म पक्की होती है, फिर तीन मास तक लड़का ससुराल में रहकर कठिन परिश्रम करता है। यदि वह लेशमात्र भी जी चुराता है तो वैवाहिक संबंध तोड़ दिये जाते हैं। आर्थिक स्थिति के अनुसार वर-पक्ष से कन्या-पक्ष के घर दहेज आता है। कुछ नकदी भी साथ होती है जो लड़की की मां के लिए होती है। यह लड़की की मां के दूध की कीमत होती है। इस तरह मां के दूध की कीमत चुकाकर अग्नि को साक्षी मानकर वैवाहिक क्रिया सम्पन्न कर दी जाती है।

भारत की एक आदिम जाति है–माड़िया। इनके यहां 'काकसार' नामक
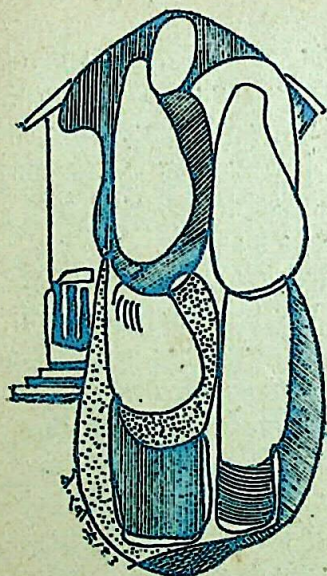
चित्र : के. रवीन्द्र

एक पर्व ऐसा होता है, जिसकी प्रतीक्षा इस क्षेत्र के युवक तथा युवतियां वर्ष भर करते हैं।

'काकसार' पर्व चांदनी रात में मनाया जाता है। इसमें प्रेमी तथा प्रेमिका का उन्मुक्त मिलन होता है। इसी अवसर पर कई अपरिचित तथा अजनबी युवक-युवती निकट आकर एक दूसरे को पसंद करते हैं और उनके मध्य भविष्य में मजबूत होने वाले प्रेम की नींव पड़ती है। यहीं पर अधिकांश विवाहों की भूमिका बनती है।

'काकसार' पर्व की सबसे बड़ी विशेषता तथा विचित्रता यह है कि इस अवसर पर वहां आकर्षण का केन्द्र युवक होता है, युवती नहीं; क्योंकि हर नवयुवक अपने को सजाने में एक दूसरे से होड़ लेता है। नृत्य के दौरान प्रत्येक नर्तक इसी बात के लिए प्रयत्नशील रहता है कि ज्यादा से ज्यादा आकर्षक वही दिखे, ताकि युवती ही आकर्षित होकर नाच के लिए उसके साथ की कामना करे।

पहले नर्तकों का दल अर्धचंद्राकार घेरा बनाकर नाचता है, युवतियां उनसे अलग थोड़ी दूर पर नाचती हैं। मगर थोड़ी देर बाद एक-एक करके युवतियां छिटक कर युवकों के पास खिंचती चली जाती हैं।

उनके मध्य नृत्य का सिलसिला सारी रात उसी गति व उत्साह के साथ चलता रहता है। बीच-बीच में अवश्य एक-एक करके कुछ जोड़े झाड़ियों की ओट में चले जाते है। 'काकसार' पर्व में युवक-युवती का यही परिचय तथा उन्मुक्त मिलन आगे चलकर विवाह में परिणत हो जाता है।

कई बार युवक युवती को सीधे अपने घर ले जाता है और ऐसी परिस्थिति में 'एक-देसीना' नामक एक विशेष प्रकार का विवाह होता है।

इसमें वर-वधू दोनों छप्पर के नीचे खड़े कर दिये जाते हैं और ऊपर से इनके सिरों पर जल उलीचकर उन्हें परिवार में पति-पत्नी की तरह स्वीकार किया जाता है।

—सरिया मिल कंपांउंड,
सिकंदरा राऊ (अलीगढ़)—२०४२१५

□

हिन्दी कहानी

एक थी सुधा....

□

डा. सुशीला गुप्ता

कलकत्ता मेल धड़धड़ाती हुई अपने गन्तव्य की ओर भागी जा रही थी। अनारक्षित डब्बे में सबका सामान बुरी तरह फैला हुआ था। सभी ने अपने लिए जैसे-तैसे बैठने की व्यवस्था कर ली थी, किसी ने सूटकेस पर तो किसी ने होल्डाल पर। मदन खिड़की वाली सीट पर बैठा था चुपचाप। धड़धड़...धड़धड़... चले जाइये... चले जाइये... चले जाइये...धड़धड़...चले जाइये.... धड़धड़..चले जाइये..गाड़ी की तेज रफ़्तार के साथ सुधा की मर्मभेदी आवाज़। ओफ़! मदन को लगा, वह पागल हो जायेगा।

अपनी सीट पर गुमसुम बैठा मदन बीते हुए क्षणों को सहेजने लगा। इलाहाबाद स्टेशन पर सुधा के पिता श्री ज्ञानचन्द्र ने कितना भावभीना स्वागत किया थ पचास लोगों की बारात का। वही बारात इस समय लौट रही थी आहत, अपमानित। उसके पिता सेठ अर्जुनप्रसाद जबलपुर के जाने-माने रईस हैं। उनके स्तर का पूरा ध्यान रखा था सुधा के पिता ज्ञानचन्द्र जी ने 'स्नेह सदन' में बारात को ठहराने का प्रबन्ध किया गया था। बारातियों की खातिरदारी में उन्होंने कुछ भी उठा न रखा था। हरा-भरा बगीचा, खूबसूरत लॉन और सजे-सजाये कमरे–इन्तज़ाम देख बाराती मुग्ध थे तो मदन भी कम फूला नहीं समा रहा था। पत्नी के रूप में उसने अपने मन में जो मूर्ति गढ़ी थी, सुधा हूबहू उसी की प्रतिमूर्ति थी–शिष्ट, सुशील, सुशिक्षित, स्वाभिमानी और सुन्दर।

श्री ज्ञानचन्द्र का 'आशियाना' जगमगा रहा था। क्या खूब तो रोशनी थी। हल्की-सी धुन पर शहनाई बज रही थी। बारात दरवाज़े पर पहुंची तो हलचल मच गयी। आवभगत में कन्या-पक्ष वाले इधर से उधर भाग रहे थे। किसी को फ़ुरसत नहीं थी। सुधा को सहेलियों का मद भरा स्वागत-गीत वातावरण में पावन मधुरिमा घोल रहा था। जयमाल की तैयारी हो रही थी। सब लोग जल्दी मचा रहे थे, दुल्हन को जल्दी ले आइये साहब! जयमाल का मुहूर्त टला जा रहा है। जयमाल की रस्म की सब उत्सुकता से बाट जोह

रहे थ।

विवाह में दान-दहेज की बात पक्की नहीं हुई थी। सुधा को मदन ने पसन्द किया था, पर दूसरी बातें अपने पिता पर छोड़ दी थीं। श्री ज्ञानचन्द्र ने संकेत से पूछा भी था कि 'भाई साहब ! आप कितने की उम्मीद रखते हैं ?' पर अर्जुनप्रसाद ने खुलकर कुछ मांगना मुनासिब नहीं समझा। उन्होंने सोचा, इसकी हैसियत तो ठीक दिखती है; लगता है, देने में कुछ कमी नहीं करेगा। जयमाल के लिए सुधा को बाहर लाया ही जा रहा था कि अर्जुनप्रसाद ने अपने समधी को एक तरफ़ ले जाकर कहा, 'ऐसा कीजिये कि जो कुछ 'कैश' देना है, वह अभी दे दीजिये।' ज्ञानचन्द्र जी सकते की-सी हालत में आ गये। उन्होंने सोचा था लड़केवालों ने खुलकर कुछ मांगा नहीं है इसलिए दहेज के रूप में ज़ेवर, कपड़े, वर्तन, फ्रिज, टी. वी. आदि सामान जुटा कर अपने को धन्य समझ रहे थे।

सेठ अर्जुनप्रसाद ने पचास हज़ार 'कैश' की मांग की। उन्होंने साफ़-साफ़ कहा, 'जब तक इतनी रक़म नहीं मिलेगी, जयमाल की रस्म नहीं होगी।' घबराये हुए ज्ञानचन्द्र अन्दर गये, सब रुपये गिन-गिना कर वे बीस हज़ार रुपये ले आये और अपने समधी के चरणों में उन्होंने रख दिया, 'अब मेरी इज्ज़त रख लीजिये, भाई साहब ! बीस हज़ार लाया हूं, बाकी के तीस हज़ार धीरे-धीरे चुका दूंगा।'

पर अर्जुनप्रसाद टस-से-मस न हुए।

'मेरे ऊपर रहम कीजिये, भाई साहब ! तरस खाइये !! मैं सच कह रहा हूं, तीस हज़ार रुपये आपको ज़रूर मिल जायेंगे, लेकिन थोड़ा वक्त दीजिये।'

'आश्चर्य है। आपने मेरे लड़के को इतना सस्ता समझ लिया !'

'आपका बेटा तो लाखों में एक है, भाई साहब ! पर मेरी मजबूरी भी तो समझिये।'

'मेरी भी कुछ मजबूरी है।... आप रुपयों का जल्दी से बन्दोबस्त कीजिये।'

'जितना ला सकता था, लाकर आपके चरणों में रख दिया। अब मेरी लाज आपके हाथों में है।'

'उठ, बेटा ! न मालूम कैसे भिखमंगों से पाला पड़ा है !'

मदन कुछ न समझ सका। वह बुत-सा बैठा रहा। कुछ बोल ही न सका; लगा, उसकी जीभ तालू से चिपक गयी है।... अन्दर से रह-रहकर औरतों की सिसकियों की आवाज़ आ रही थी, पर मदन तनिक भी साहस न जुटा सका। सिर उठाकर वह पिता से नहीं कह सका, 'जाने दीजिये, पिताजी ! इतना 'कैश' वे कहां से लायेंगे ?'

• • •

मदन ने समय काटने के लिए अपने बैग से एक पत्रिका निकाली। 'निरमा' साबुन का विज्ञापन—एक युवती निरमा का गुण बखान रही है। युवती का चित्र धीरे-धीरे धूमिल होता गया और उसकी जगह सुधा

की आकृति उसे मुंह चिढ़ाने लगी... 'निरमा के असंख्य पैकेट भी तुम लोगों के मन का मैल नहीं धो सकते, मदन जी!' दुल्हन के वेश में सजी-संवरी सुधा उसे धिक्कार रही थी। मदन ने महसूस किया, उसकी पुतलियां नम हो रही हैं। उसने पत्रिका बन्द कर दी।

धड़धड़... धड़धड़.. चले जाइये.. चले जाइये... धडधड़... धड़धड़..; चले जाइये... चले जाइये... सुधा की करुण आवाज़ उसके दिल को वेधती रही। बाहर हल्की-हल्की बौछार पड़ रही थी, उसने चाहते हुए भी खिड़की बन्द नहीं की। टपटप... टपटप... टपटप.. टमटप... चले जाइये... चले जाइये ... चले जाइये.. चले जाइये.. अरे! उसे हो क्या गया है! क्या जीवन-पर्यन्त इस स्वर से वह पीछा नहीं छुड़ा सकेगा? सामने की पटरी पर एक मालगाड़ी सर्राटे से निकल गयी। मदन को लगा, वह भी उसे फटकार गयी—चले जाइये... चले जाइये।... सुधा की आवाज़ उसके कानों में पिघलता हुआ सीसा उड़ेल रही थी, निरन्तर लगातार।

ooo

ज्ञानचन्द्र जी ने रोते-रोते सेठ अर्जुन प्रसाद के पैर पकड़ लिये। 'सेठजी! मेरी बेटी को अपना लीजिये, सेठ जी! मेहरबानी करके उसे मत ठुकराइये।... मैं आपसे हाथ जोड़ता हूं, सेठ जी!'

लेकिन सेठ अर्जुनप्रसाद नहीं पिघले। 'हे भगवान! अब मैं क्या करूं! क्या करूं परमात्मा!! क्या यही दिन देखने के लिए मैं जिन्दा था।' ज्ञानचन्द्र जी उन्मत्त हो धरती पर अपना सिर पटकने लगे। सारे रिश्तेदार दौड़े आये। कोई उन्हें बचाता, तब तक धरती पर खून की एक लकीर बन गयी थी। तभी सुहाग के जोड़े में लिपटी सुधा तीर-सी सनसनाती हुई बाहर आयी, 'बस कीजिये, सेठ अर्जुन प्रसाद! बस कीजिये!! मेरे पिताजी आपसे थोड़ी-सी इज़्ज़त की भीख मांग रहे हैं, लेकिन आप इन्सान होते तब तो आप पर कोई असर होता! आप दौलत के लालच में अंधे हो गये हैं! हैवान हो गये हैं!! चले जाइये यहां से! चले जाइये!!'

सुधा ने अपने पिता की मरहम-पट्टी की। मां की-सी ममता उड़ेलते हुए दुल्हन-वेश में वह अपने पिता को समझा रही थी, 'जाने दीजिये, पिताजी! आप क्यों अपने को छोटा करते हैं?... नहीं, पिताजी! ऐसे मत रोइये...' उनके आंसुओं को अपने रेशमी पल्लू में समेटती हुई सुधा उन्हें पुचकार रही थी, 'मत रोइये, पिताजी! चुप हो जाइये.... आपने कोई गुनाह थोड़े ही किया है, पिताजी! हम अपना बड़प्पन क्यों खोयें भला! चलिये, पिताजी! अन्दर चलिये। ...ऐसे खूंख्वार लोगों का साया आप पर नहीं पड़ने दूंगी।'

सेठ अर्जुनप्रसाद की ओर मुखातिब

होकर उसने कहा, 'सुना नहीं आप लोगों ने ? बारात वापस ले जाइये ! दफा हो जाइये यहां से !! चले जाइये !!!'

थोड़ी देर पहले ही जहां हलचल मची थी, वहां एकदम सन्नाटा छा गया था।

सुधा फिर दहाड़ी, 'आप लोग तमाशा क्या देख रहे हैं ? सुनायी नहीं दिया आप लोगों को ? क्या आप लोगों को यहां से निकालने के लिए पुलिस की मदद लेनी पड़ेगी ? ... चले जाइये ! हां, हां ! मैं कहती हूं, चले जाइये।' और वह वेग से-उमड़ती हुए रुलाई को रोकती हुई ज्ञानचन्द्र का हाथ पकड़ अन्दर चली गयी।

०००

दृश्य बदल गया। सेठ अर्जुनप्रसाद का ऐसा अपमान उनके जीवन में कभी नहीं हुआ था और वह भी बीस वर्ष की एक युवती के हाथों। कुछ देर तक तो बाराती समझ ही न सके कि अब क्या करना चाहिये। कन्या-पक्ष वालों को धमकी देना और बात थी, परन्तु तिरस्कृत हो उलटे पांव लौटने की नौबत आ सकती है, ऐसी तो किसी ने कल्पना भी न की थी। सारे बाराती जनवासे लौट गये और अपना-अपना सामान बांधने लगे। एक घंटे के अन्दर ही सब स्टेशन पहुंच गये, लेकिन कलकत्ता मेल तो बारह घंटे बाद वहां से छूटनेवाली थी सब लोगों के लिए बारह घंटे बारह युग के समान प्रतीत हो रहे थे। मदन की हालत लुटे हुए मुसाफिर-सी हो रही थी। दोस्तों ने समझाने की कोशिश की, 'छोड़, यार ! चिन्ता क्यों करता है !' पर मदन क्या छोड़े ? उसका तो सभी कुछ पीछे छूट गया था।

गाड़ी आयी तो ठेलमठेल मची थी। अनारक्षित डब्बे में सभी बाराती सामान-सहित ठूंसे गये। कहां तो प्रथम श्रेणी में ठाट से जाते, कहां द्वितीय श्रेणी के अनारक्षित डब्बे में ऐसी दुर्दशा !

टिकट... टिकट प्लीज़ ! कंडक्टर ने टिकट मांगा तो ऊंघते हुए अर्जुनप्रसाद ने आंखें खोलीं। कुछ क्षण वे देखते रहे। फिर धीरे से टिकट निकालकर उन्होंने कंडक्टर के सामने बढ़ाया। 'बारात जा रही है? आजकल लगन की कितनी भीड़ है। शायद आरक्षण नहीं मिला।' कंडक्टर को कौन बताता कि वास्तव में आरक्षण तो अगले दिन का प्रथम श्रेणी का था। पर सेठ अर्जुनप्रसाद समय से पूर्व लौट रहे थे द्वितीय श्रेणी के अनारक्षित डब्बे में सभी बारातियों के साथ, जिनमें दूल्हा तो था, पर दुल्हन नदारद थी।

गाड़ी की गति धीमी होने लगी। लगा, कोई स्टेशन आ रहा है। मदन ने बाहर झांककर देखा मानिकपुर स्टेशन था। चाय गरम, गरम समोसे, पूरी-सब्जी आदि की मिली-जुली आवाजें उसके दिमाग में गड्डमड्ड हो रही थीं। वह प्लेटफार्म पर उतरने लगा तो अर्जुनप्रसाद ने टोका, 'कहां जा रहा है ? गाड़ी जल्दी ही छूटेगी।' 'आ जाऊंगा, आप चिन्ता क्यों करते हैं ?' कहते हुए मदन प्लेटफार्म पर

उतर पड़ा। उसे लगा, उसने कितनी देर बाद खुलकर सांस ली है।

प्लेटफार्म पर मदन काफ़ी देर तक टहलता रहा। उसे गाड़ी की सीटी सुनायी दी। उसने सोचा, दौड़कर गाड़ी पकड़ लूं। लेकिन लगा, पैरों को किसी ने जकड़ दिया है। गाड़ी निकल गयी। वह भीड़ में खो गया। बाहर निकलकर कुछ घंटे बिताने होंगे, तब भावी कार्यक्रम तय होगा, यह सोचकर जब वह आगे बढ़ा तो उसे होश आया, उसके पास टिकट नहीं है। बिना टिकट यात्रा करना जुर्म है। उसे अपने ऊपर हंसी आयी। उसने बिना टिकट यात्रा कहां की! वह तो बस मजबूरी का शिकार हो गया है। कोई बात नहीं ... 'जान है तो जहान है' की मुद्रा में उसने दंड के पैसे भरे। बाहर निकला तो ज़रूरत की कुछ वस्तुएं खरीदीं और सस्ते से होटल में एक कमरा ले लिया। ... हां, बोल बेटा! अब सोच, क्या करेगा? बम्बई जायेगा? तो फिर सुधा का क्या होगा? हां, सुधा का क्या होगा? विवाह की बात भूल भी जाये तो भी एक बार तो वहां जाना ही होगा—नहीं तो वह आवाज ... चले जाइये ... चले जाइये ... क्या मेरा पीछा छोड़ेगी? ... उस अभिमानिनी के मर्म पर उसने जो चोट पहुंचायी है, उसके कारण इस जनम में तो क्या, सात जनम

तक उसे शान्ति नहीं मिलेगी।

कुछ ही घंटों के बाद मदन श्री ज्ञानचन्द्र के दरवाज़े पर दस्तक दे रहा था। दरवाज़ा सुधा ने ही खोला। 'पिताजी ! देखिये, कौन आया है ?' कहती हुई वह अन्दर भागी।

सिर पर पट्टी बांधे श्री ज्ञानचन्द्र बाहर आये। उन्होंने सामने मदन को देखा तो सहसा अपनी आंखों पर विश्वास न कर सके। मदन उनके पैरों की धूल लेने को झुका तो उन्होंने उसे गले लगाते हुए कहा—'सब समय का फेर है, बेटा ! तुम्हारा कोई दोष नहीं है। चलो अन्दर चलो।' बैठक में मदन की अच्छी खातिर हुई, मानो इसके पहले कहीं कुछ घटा ही न हो, परन्तु विवाह की कोई चर्चा नहीं हो रही थी। अन्त में उसने ही साहस बटोरकर कहा—'पिताजी ! मैं सुधा से विवाह करूंगा, कल ही।'

'क्या कह रहे हो, बेटा ! तुम्हारे पिताजी क्या सोचेंगे ?'

'सोचने दीजिये। कुछ भी सोचने दीजिये। मेरा भी तो कोई विवेक है। हां, यदि आपको और खास तौर पर सुधा को कोई एतराज़ हो तो बात दूसरी है।'

'हम लोगों को कोई एतराज़ क्यों होगा, बेटा !'

'आप लोग सोच लीजिये। कोई उम्मीद नहीं है कि पिताजी मुझे स्वीकार करेंगे। मेरे पास केवल डाक्टरी की डिग्री है और कुछ नहीं है—न नौकरी, न सिर छिपाने के लिए कोई छत। नये जीवन में प्रवेश करने पर सुधा को मुसीबतों का अम्बार ही मिलेगा। आप अन्दर जाइये। घर में राय-मशवरा कर लीजिये। मैं यहां बैठा हूं।'

ज्ञानचन्द्र ने वहीं बैठक में सुधा को बुलाया। 'बैठ, बेटी ! संकोच की क्या बात है ! मदन लौट आया है और तुम्हें अपनाना चाहता है। बोल, बेटी ! इस समय उसके पास न नौकरी, न मकान। ब्याह करेगी उसके साथ ?'

'पिताजी ! इनसे कह दीजिये कि इन्होंने यदि सुधा को उसके सब गुण-दोषों के पसन्द किया था तो सुधा ने भी इनके पिताजी की हवेली, फैक्टरी और बैंक-बैलेन्स के साथ नहीं, मदन सक्सेना, एम. बी. बी. एस. के साथ नयी ज़िन्दगी शुरू करने का ख्वाब देखा था।'

अगले दिन मदन और सुधा परिणय-सूत्र में बंध गये।

०००

'सुनो ! आज जल्दी आना।'

'क्यों ! क्या बात है ?'

'आज मैं छुट्टी ले रही हूं। तुम भी जल्दी आ जाना।... तुम्हीं बताओ, क्या बात हो सकती है ?'

'ओ हो ! तो यह बात है। आज हमारी शादी के तीन सौ पैंसठ गुणे पांच—इतने दिन बीत गये। ठीक ? बोलो ! क्या तोहफ़ा लाऊं ?.... अच्छा सुधा ! इतने वर्षों के बीच कभी हम लोग आपस में झगड़े क्यों नहीं ?'

'क्या पता ?'

'मैं बताता हूं ।'

'नहीं, मैं बताती हूं ।...क्योंकि मेरा जीवन-साथी जो है, वह....'

'वह कायर है, बुज़दिल है ।'

'नहीं, वह लाखों में एक है ।'

'नहीं सुधा, खुशनसीब मैं हूं । पिताजी ने तो मेरा पत्ता ही काट दिया था । वह तो मेरी अक्ल ज़रा ठिकाने लग गयी थी कि मैं ट्रेन में बारात को छोड़कर उस समय उतर गया था ।'

'यह क्यों नहीं कहते कि वह तो तुम्हारा बड़प्पन था, जो मुझे अपनाने के लिए सब कुछ छोड़ मेरे पास चले आये थे ।'

'तुम क्या जानो, सुधा, तुम मेरे लिए, क्या हो ! ... खैर छोड़ो, यह तो बताओ, तुम्हारे लिए क्या तोहफ़ा लाऊं ?'

'बस, तुम जल्दी आ जाना ।'

'अच्छा, मेमसाहब ! बन्दा हुक्म की तामील करने की पूरी कोशिश करेगा ।'

मदन को भेजकर सुधा काम में व्यस्त हो गयी । आज उसे लौकी के कोफ्ते और कढ़ी बनानी है । मदन को ये दोनों चीज़ें बहुत पसन्द हैं । पूरे दो घंटे तक वह रसोई में व्यस्त रही । पसीने से लथपथ बाहर निकली तो सोचा, स्नान कर लूं । तरोताज़ा हो आरामकुर्सी पर बैठ मदन की प्रतीक्षा करने लगी ।

संघर्ष के प्रारंभिक दिनों के प्रति उसने कभी कोई शिकायत नहीं की । मुसीबत तो हर व्यक्ति के जीवन में आती है, तो क्या कोई हार मानकर बैठ जाय ? एक जगह से दूसरी जगह, दूसरी जगह से तीसरी जगह —वे दोनों धक्के खाते रहे । नौकरी अच्छी मिली तो घर नहीं । घर अच्छा मिला तो नौकरी ठीक नहीं । अन्त में मदन को लखनऊ के मेडिकल कॉलेज में नौकरी मिली । आज वह एक सफल और लोकप्रिय डॉक्टर है । सुधा ने भी निकट के एक स्कूल में प्रिंसिपलशिप ले ली है । क़रीने से सजा हुआ उसका फ्लैट है । पर एक बात उसे सदैव सालती रहती है । उसकी खुशी की खातिर मदन ट्रेन से जो उतरा तो फिर उसने पीछे मुड़-कर नहीं देखा । उसके पिताजी कितना पीछे छूट गये हैं । बाप-बेटे की दूरी इतनी बढ़ गयी है कि दोनों का मिलना असम्भव ही हो गया है । सुधा ने मदन को बताये बगैर अपने श्वसुर को न जाने कितने पत्र लिखे, पर हर बार निराशा ही हाथ लगती थी । मदन को उसने जबलपुर भेजने की कितनी बार कोशिश की, पर वह हमेशा बात को टाल जाता है ।

सुधा क्या करे ?

आज मदन कोई-न-कोई तोहफ़ा देना चाहता है । उसके आने पर वह पिताजी की चर्चा करेगी ।... सहसा दरवाज़े पर किसी ने घंटी बजायी । उठकर देखा तो पोस्टमैन था । 'मेमसाहब ! तार है; लीजिये, दस्तखत कीजिये ।' न जाने क्यों, तार के नाम पर सुधा हमेशा—घबरा जाती है । मदन उसे हमेशा चिढ़ाता है, 'अरे भई !

उस दिन तो पूरी बारात की ख ़र ले ली थी, किसी से डरी नहीं थीं। तार के नाम पर तुम्हारी कंपकंपी क्यों छूट जाती है ?' लेकिन वह क्या करे ! तार खोलते-खोलते उसके हाथ कांप गये—तो पिताजी बीमार हैं। हे भगवान ! अब क्या होगा । दूर के रिश्ते की एक फूफी पिताजी के साथ रहती थी । उन्होंने घबराकर तार दिया था ।

मदन अस्पताल से आया तो बड़ा खुश था । कहा, 'आज शाम को कोई अच्छी-सी पिक्चर देखेंगे ।'

खाना खाकर वे दोनों उठे तो सुधा अधिक सब्र न कर सकी । 'आओ, मदन ! थोड़ी देर बैठक में बैठेंगे । तुमसे बात करनी है ।'

'कर लेना, भई ! बात भी कर लें । क्यों न मावदौलत थोड़ी देर यहीं पर आराम फ़रमा लें !'

'नहीं, . . . क्यों, मदन ! क्या तुम्हें पिताजी की बिल्कुल याद नहीं आती ?'

और मदन गम्भीर हो गया ।

'मदन ! पिता बनकर ही पिता का दर्द समझोगे ? उसके पहले नहीं ?'

'जब बनूंगा, तब देखा जायेगा ।'

'और मैं कहूं . . . तुम . . पिता . . . '

'क्या ? सच ?'

'हां, मदन ! मेरी सन्तान—हमारी सन्तान—जन्म ले, उसके पहले पिताजी का आशीर्वाद ले लो, मदन ! चाहे जैसे हो सके ।'

'बताओ, सुधा ! मैं क्या करूं ? . . . . तुम पिताजी की ज़िद्द नहीं जानती । मैं जानता हूं ।'

'तो भी तुम्हें जाना है ।'

'तुम नहीं चलोगी ?'

'नहीं, तुम अकेले जाओ ! और सुनो, तुम्हें—पिताजी से यह कहना है कि तुमने मुझे—अपनी पत्नी सुधा को—छोड़ दिया है । उसे उसके मायके पहुंचा आये हो ।'

'इतना बड़ा झूठ क्यों ? नहीं, सुधा, मुझसे यह नहीं होगा । मुझे कुछ फ़र्क नहीं पड़ता है ।'

'पर मुझे पड़ता है, मदन ! तुम जाओ, मदन ! आज रात की ट्रेन से ही जाओ । मैंने तुम्हारा आरक्षण करवाने के लिए नौकर को स्टेशन भेजा है । वह आता ही होगा । . . . पिताजी बीमार हैं, मदन ! हम उन्हें खो नहीं सकते ।' फूफी का भेजा हुआ तार उसने मदन को पकड़ाया और वह फूट-फूट कर रोने लगी ।

'अच्छा, सुधा ! जाऊंगा, बस तैयारी कर दो ।'

जबलपुर पहुंचकर मदन को पता लगा, उसके पिताजी को दिल का दौरा पड़ा है । उन्हें अस्पताल में भर्ती किया गया है । फूफी उनकी देखभाल के लिए ज़्यादातर अस्पताल में ही रहती हैं । वह घर पर सामान रख सीधे अस्पताल पहुंचा । डॉक्टर वर्मा उनका इलाज कर रहे थे । मदन उनसे मिला, केस हिस्ट्री पर चर्चा की । डॉक्टर वर्मा ने बताया, 'खतरा टल गया है, हल्का-सा अटैक था, एहतियात की

सख्त जरूरत है। मरीज को उत्तेजित होने से बचाना होगा।' फूफी के द्वारा मदन ने कहलवाया कि वह सुधा को छोड़ आया है। अस्पताल में मदन ने अपने पिताजी से मुलाकात करना मुनासिब नहीं समझा।

उसी दिन अर्जुनप्रसाद को अस्पताल से छुट्टी मिलने वाली थी। मदन ने सोचा, घर पर ही मिलना ठीक रहेगा। दरवाजे पर ही उसने अपने पिताजी का स्वागत किया। 'पिताजी!' कहते हुए वह उनके गले लगा तो अर्जुनप्रसाद एक क्षण तो टुकुर-टुकुर उसकी ओर देखते रहे। उनकी आंखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। 'बेटा!' कहते हुए उन्होंने मदन को छाती से भींच लिया... बाप-बेटे का स्नेह-मिलन फूफी देर तक देखती रहीं। फिर उन्होंने ही दोनों को हाथ पकड़कर अन्दर पहुंचाया।

मदन अपने पिता के साथ उनके कमरे तक गया। 'अब आप आराम करेंगे, पिताजी!'

'और तुम?'

'मैं लम्बी छुट्टी लेकर आया हूं। आपकी सेवा करूंगा।'

'क्यों, मदन! सुना है, तू बहुत बड़ा डाक्टर बन गया है।'

'हां, पिताजी! आपके तथा बुजुर्गों के आशीर्वाद से!'

'अच्छा यह बता। क्या सचमुच सुधा को उसके मायके पहुंचा आया है? उसे छोड़ दिया है? तलाक ले रहा है क्या?'

मदन ने सिर झुका लिया, कोई उत्तर नहीं दिया।

पन्द्रह दिन किस तरह बीत गये, पता ही नहीं लगा। मदन की उपस्थिति से घर में चहल-पहल रहती। वह हर समय पिताजी की देखभाल में लगा रहता। सब कुछ समय पर होता। नौकर-चाकर सभी व्यस्त थे। फूफी भी कम व्यस्त नहीं रहतीं, पर उनके चेहरे पर सदैव उल्लास दिखायी देता। उनके दिल से एक बड़ा भारी बोझ हट गया था।

फूफी से मदन को पता लगा, उसके पिताजी वसीयत कर रहे हैं।... उनके ले-दे के एक ही तो बेटा है, सारी जायदाद उसी के नाम कर रहे हैं।

मदन दनदनाता हुआ उनके कमरे में पहुंचा।

'पिताजी! पिताजी!! आप वसीयत कर रहे हैं? मेरे नाम कर रहे हैं? पिताजी! मैंने आपको धोखा दिया है।'

'क्या कहा, बेटा? तूने मुझे धोखा दिया है? कैसा धोखा?'

'मैंने सुधा को छोड़ा नहीं है, पिताजी! उसे मैं छोड़ भी नहीं सकता। उसी ने मुझे जीवन की संपूर्णता दी है, पिताजी! उसे छोड़कर तो मैं शून्य रह जाऊंगा—एकदम शून्य। उसी की खातिर, उसी की खुशी की खातिर मैंने झूठ बोला। हां, पिताजी! उसी ने मुझे झूठ बोलने के लिए मजबूर किया।'

'बेटा! मेरी बात तो सुन।'

'नहीं, पिताजी! आज आपकी बात

मैं नहीं सुनूंगा। आज आप मेरी बात सुनेंगे। मुझे आपकी दौलत नहीं चाहिये, पिताजी! मुझे चाहिये केवल आपका आशीर्वाद। सुधा ने कहा था, पिता बनने से पहले पिता का आशीर्वाद ले लो मदन!'

'लेकिन...'

'नहीं, पिताजी! मुझे बोल लेने दीजिये। मैं अपनी पत्नी सुधा को हरगिज़-हरगिज़ नहीं छोड़ सकता, पिताजी! वह एकदम अकेली है। मेरे सिवा उसके और है ही कौन? और..और फिर ऐसी हालत में मैं उसे कैसे छोड़ सकता हूं, जबकि वह मेरे बच्चे की मां बननेवाली है।... मुझे माफ़ कर दीजिये, पिताजी! मैं केवल आपका आशीर्वाद लेने आया था...कोरा आशीर्वाद।'

'अब बन्द भी करेगा अपना लेक्चर या नहीं? तू धोखा दे रहा था और मैं धोखा खा रहा था, यही कहना चाहता है न? क्यों रे मदन! तूने अपने बाप को एकदम पत्थरदिल समझ रखा है?... इधर आ, मेरे पास बैठ।'... उन्होंने अपने सिरहाने से एक छोटा-सा पत्र निकाला और मदन के हाथ में देते हुए कहा 'ले पढ़ इसे।' मदन ने पढ़ा—

प्रिय मित्र अर्जुनप्रसाद,

मैं तुम्हारे दिये हुए पते पर तुम्हारे बेटे के घर गया था। वह तो घर पर मिला नहीं। उसकी पत्नी थी। उसने मुझे बताया कि मेरे पति बाहर किसी काम से गये हैं। उसे लगा, मैं कोई मरीज हूं।... और सुनो; तुम्हारी बहू तो बड़ी सुघड़ है. बधाई।

तुम्हारा ही—
कान्ति कुमार

मदन अपने पिता के चेहरे पर देर तक नज़रें टिकाये रहा।

अर्जुनप्रसाद ने अपनी आंखों से बहते हुए आंसुओं को रोका नहीं, पोंछा नहीं। उनकी स्वीकारोक्ति पिघल-पिघलकर प्रकट हो रही थी—'बेटे! मैं अहंकारवश अपनी बहू को माफ़ नहीं कर सका था। गलती उसकी नहीं थी, मेरी थी; पर फिर भी आगे बढ़कर उसी ने मुझे माफ़ किया, तभी तो इतना बड़ा कारण देकर मेरे बेटे को मेरे पास भेज दिया।... मदन बेटे, किसने कहा कि मैं वसीयत तेरे नाम कर रहा हूं, वसीयत तो मैं सुधा के नाम कर रहा हूं।

'...और सुन। कल सवेरे की ट्रेन से मेरी बहू पहली बार ससुराल आ रही है। यह देख उसका तार—'पन्द्रह तारीख को सवेरे की गाड़ी से पहुंच रही हूं—सुधा।'

मदन की दृष्टि सामने कैलेन्डर पर गयी। आज चौदह तारीख थी। वह एक क्षण तार को दूसरे क्षण अपने पिताजी को देखता रहा—भौचक, आश्चर्यचकित, भाव-विह्वल।

—भागीरथीबाई मानमल रुइया महिला महाविद्यालय, ११ कृष्ण कुंज, वाच्छा गांधी रोड, गामदेवी, बम्बई—४००००७

□

हिन्दी के रवीन्द्रनाथ टैगोर ।

हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकार जैनेन्द्र कुमार और डा. लक्ष्मी नारायण लाल को वंग साहित्य सम्मेलन के आयोजक, स्थानीय एक कम्पनी की अतिथिशाला में ठहरा कर चले गये। लगभग पौन घंटा के बाद अतिथिशाला का केअर-टेकर आया। अतिथिशाला में इन लोगों को देखकर वह चकरा गया। उसने रौबीली आवाज़ में कहा—'आप लोग जल्दी से बाहर निकल जाइये । किसकी अनुमति से आप लोग इधर आ गये है ?' उसने सामान उठाकर फेंकना चाहा।

जैनेन्द्र जी, अतिथिशाला को देखकर मन ही मन प्रसन्न हुए थे, किन्तु केअर-टेकर का अभद्र व्यवहार देखकर घबड़ा गये। केअर-टेकर को समझाने की उन्होंने पूरी कोशिश की, पर वह अपनी जिद्द पर ही अड़ा रहा। जैनेन्द्र जी ने सोचा, केअर-टेकर बलपूर्वक सामान फेंकने के लिए उठायेगा, तो डा. लाल रोक सकेंगे। पर डा. लाल की हालत और भी खस्ता थी। उनके चेहरे का रंग उड़ गया था।

डा. लाल की अवस्था का अनुमान लगाकर जैनेन्द्र कुमार अत्यधिक घबरा गये थे। उन्होंने सोचा, समस्या गम्भीर है, कोई न कोई रास्ता निकालना पड़ेगा।

जैनेन्द्र जी ने अपना और डा. लाल का परिचय बताया। केअर-टेकर ने उसी लहजे में कहा—'हम साहित्यकार नहीं समझता है। आप लोग अपना समान उठाइये, नहीं तो हम फेंक देगा।'

डा. लाल ने तपाक से कहा, आपने रवोन्द्रनाथ टैगोर का नाम सुना है। केअर-टेकर बोला—'गुरुदेव को कौन नहीं जानता ?' अब लाल साहब को लगा कि बाजी उनके हाथ आने वाली है, उन्होंने जैनेन्द्र जी की ओर इशारा करते हुए कहा—'हिन्दी के रवीन्द्रनाथ टैगोर आप ही हैं।'

केअर-टेकर का स्वर धीमा पड़ गया। भावुकता में बोझिल हो उसने जैनेन्द्र कुमार और लाल साहब का चरण स्पर्श किया। केयर-टेकर ने भाव-विह्वल होकर कहा—'लगता है, आप लोग एडवान्स में आ गये हैं।'

—बलराम सुमन

□

वृक्षों की पूजा

□

राजनारायण पांडेय

पूजा हमारी आन्तरिक भावनाओं—भक्ति, श्रद्धा, विश्वास, प्रेम, कृतज्ञता आदि प्रकट करने का एक तरीका है। पूजा के विविध रूप हैं। माला-फूल चढ़ाना, चन्दन-अक्षत-हल्दी-सिन्दूर आदि अर्पण करना, अगरबत्ती-धूप-दीप जलाना, फल-मिठाइयां या अन्य खाद्य चढ़ाना, बलि चढ़ाना, धागा बांधना, प्रदक्षिणा करना, मंत्रोच्चारण करना, भजन-कीर्तन गाना, प्रार्थना करना, ध्यान धरना, व्रत-उपवास रखना, तपस्या करना, मौन धारण करना, किसी विशेष मुद्रा में खड़े या बैठे रहना—इत्यादि पूजा के विविध रूप हैं। हमारे देश में, जहां अनेक देवी-देवताओं की पूजा होती रही है, वहीं कई ऐसे वृक्ष भी हैं, जिनकी पूजा बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ की जाती रही है। वृक्षों की पूजा हमारे देश में ही नहीं, बल्कि कुछ अन्य देशों में भी की जाती है; और यह पूजा आज से नहीं, बल्कि मानव-सभ्यता के प्रारंभ से ही होती आ रही है।

शुरू-शुरू में आदिम मनुष्य ने जब पेड़ों के सुन्दर रूपरंग को देखा होगा, उनके मोहक फूलों की रंग-सुषमा को देखकर मुग्ध हो गया होगा या उनके मीठे फलों को खाकर आत्मतोष का अनुभव किया होगा, अथवा उनकी सुखद शीतल छाया में विश्राम कर तरो-ताज़ा हो गया होगा।' तो निश्चित ही उसे लगा होगा कि ये पेड़-पौधे भगवान द्वारा मनुष्य को दिये गये सबसे बड़े उपहार हैं। उसे पेड़ों में भगवान की कल्याणकारी, मंगल मूर्ति दिखी। पेड़ों के प्रति उसका हृदय श्रद्धा और कृतज्ञता से भर गया, और अपनी भावनाओं को विविध प्रकार से प्रकट करने के लिए वह पूजा करने लगा।

आज भी हमारे देश में, विशेषकर ग्रामीण अंचल में अनेक वृक्षों की पूजा की जाती है। वृक्षों की पूजा का संबंध कई बातों से है। कुछ वृक्षों की पूजा इस विश्वास से की जाती है कि अमुक वृक्ष में किसी देवता या आत्मा का वास है। कुछ वृक्षों का सम्बन्ध, इष्ट-देवों, धर्म-गुरुओं या अवतारी पुरुषों से माना जाता है तो किसी वृक्ष की पूजा उसके सर्वाधिक उपयोग के कारण कृतज्ञता-ज्ञापन के लिए की जाती है। कुछ वृक्षों की पूजा इसलिए होती है कि उनमें भूत-प्रेत-पिशाच का वास है; पूजा से प्रेतबाधा नहीं लगेगी; तो कुछ वृक्षों की पूजा प्रेतबाधा दूर करने के लिए

की जाती है।

कुछ वृक्षों से अनेक पौराणिक धर्म-कथाएं जुड़ी हैं तो कोई वृक्ष किसी स्थान विशेष पर उगने के कारण पवित्र है। कुछ वृक्षों में होने वाली दैहिक क्रियाओं को चमत्कारिक मानकर वृक्ष की पूजा की जाती है तो किसी वृक्ष की पूजा मात्र अंध-विश्वास के कारण की जाती हैं। तो आइये चलें—ऐसे ही कुछ पवित्र वृक्षों की दुनिया की सैर करने।

बड़े पेड़ों में, जिनकी पूजा सर्वाधिक लोकप्रिय है, पीपल का नाम सबसे पहले लिया जा सकता है। ऐसा कहा जाता है कि विष्णु भगवान का अंतिम अवतार पीपल-वृक्षके नीचे हुआ था। इसलिए यह पेड़ हिन्दुओं के लिए पवित्र और पूजनीय है। पीपल के पेड़ में धागे बांधकर, सिंदूर अर्पणकर, जल-माला-फूल से अर्चना करके संतान चाहने वाली स्त्रियां इस पेड़ की एक सौ आठ बार प्रदक्षिणा करती हैं; और अपनी मनोकामना की सिद्धि के लिए पेड़ से प्रार्थना करती हैं। पीपल के पेड़ की पूजा प्रायः शनिवार को सवेरे की जाती है। कुछ जगहों पर यह बात भी प्रचलित हो चुकी है कि पीपल के पेड़ पर भूत-प्रेत-जिन्न आदि रहते हैं; अतः प्रेत-बाधा शान्त करने के लिए भी इस पेड़ की पूजा की जाती है। दिमागी रोगियों के लिए इस पेड़ का इलाज बड़ा लाभदायक माना जाता है। ऐसे रोगियों को पीपल की ताज़ा कोपलें गाय के दूध में पकाकर खिलाने से लाभ पहुंचता है।

पीपल के पेड़ घरों के सामने और मन्दिरों के पास इस विश्वास से लगाये जाते हैं कि पेड़ के आशीर्वाद से गृहस्वामी की समृद्धि और सम्पन्नता हमेशा बनी रहेगी।

बौद्ध धर्म के अनुयायियों के लिए तो पीपल का पेड़ परम पवित्र है। इसी वृक्ष के नीचे गौतम बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ था। श्रीलंका में अनुराधा-पुरा नामक स्थान पर लगाये गये पीपल के पेड़ की पूजा आज भी बड़ी श्रद्धा और भक्ति से की जाती है। कहा जाता है कि गया के बोधि-वृक्ष की एक शाखा लाकर अनुराधापुरा में लगायी गयी, जो बढ़कर वह पीपल का पेड़ बनी है। पीपल की पूजा संभवतः उन सभी देशों में की जाती है, जहां पर बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ।

पीपल का पेड़ सचमुच एक महान वृक्ष है। विस्तृत आकार, दीर्घ जीवन, औषधीय गुण, सफेद चमकता हुआ विशाल तना, थोड़ी-सी भी हवा चलने पर गतिशील होने वाली पत्तियां, सैकड़ों पक्षियों को रैन-बसेरा देने वाला यह वृक्ष निश्चित ही हमारे हृदय पर अपनी महानता की छाप
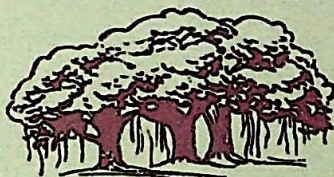
छोड़ देता है। लगता है, इस पेड़ से संबंधित भूत-प्रेत का डर लोगों को इसलिए दर्शाया गया होगा कि लोग इस वृक्ष को काटें नहीं। क्योंकि इस वृक्ष की उपयोगिता का ज्ञान गांववालों को शीघ्र ही हो गया होगा। वृक्ष के बड़े आकार के कारण सार्वजनिक, धार्मिक अनुष्ठान इसके नीचे ही सुविधा-पूर्वक सम्पन्न हो सकते थे।

अब हम एक ऐसे पवित्र पौधे की चर्चा करेंगे, जो आकार में पीपल जैसा बड़ा तो नहीं, पर हिन्दू महिलाओं की श्रद्धा, भक्ति और प्यार प्राप्त करने में पीपल से भी कहीं बढ़कर है। हर घर-आंगन में मौजूद, अपनी गृहस्वामिनी के श्रद्धालु हाथों से प्रतिदिन जलाभिषेक और दीपार्चन प्राप्त करने वाला वह पौधा है—तुलसी का। प्रतिदिन तो दिया-बाती और गृहिणी का प्रेम-प्रसून प्राप्त करता ही है, श्रावण-अमावस्या को तुलसी का पौधा सभी सुहागिनों के लिए विशेष पूज्य हो जाता है। श्रावण की अमावस्या को विशेष रूप से तुलसी-व्रत रखा जाता है, जिसे गाय-तुलसी-व्रत कहते हैं।

तुलसी के पौधे के प्रति हमारी श्रद्धा उसके सम्पूर्ण पौधे के औषधीय गुण के कारण अवश्य है। चरक, सुश्रुत संहिताओं में इसका नाम 'सुरस' और 'सुरसा' है। ग्राम्य-सुलभा होने के कारण उसका उप-योग भारतीय चिकित्सा में इतना गुण-दायक पाया गया कि सुश्रुत के टीकाहार उसे तुलसी—अर्थात् रोग-रोगाणुओं के संहार में उसकी तुलना में और कोई न हो, कहने लगे। अनेक बीमारियों में तुलसी का रस गुणकारी बताया जाता है।

पीपल और तुलसी के अलावा जो अन्य वृक्ष धार्मिक और पूजनीय माने जाते हैं, उनमें बरगद, नीम, आंवला, गोरखचिंच, बेल, सीता अशोक, पुत्रजीवा, कदम्ब, केला, महुआ, बकुल (मौलिसिरी), पारि-जात, नारियल, देवदार, रुद्राक्ष, धतूरा, मदार इत्यादि मुख्य हैं। ये सभी वृक्ष किसी न किसी धार्मिक, पौराणिक या लोककथा से जुड़े हैं और किसी न किसी रूप में पवित्र माने जाते हैं।

बरगद या वटवृक्ष भी हमारे देश में कई जगहों पर पूजा जाता है। ऐसा कहा जाता है कि सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा ने अपने को बरगद के पेड़ के रूप में बदल लिया था। बरगद का पेड़ शक्ति और दीर्घ जीवन का प्रतीक माना जाता है। संतान की कामना और चिरसुहाग के लिए स्त्रियां वटवृक्ष की पूजा करती हैं। 'वट-सावित्री-व्रत', जो ज्येष्ठ मास की त्रयोदशी से पूर्णिमा तक रखा जाता है; इसी वृक्ष से जुड़ा हुआ है। वट-सावित्री-व्रत की कथा सत्यवान और सावित्री की कथा से जुड़ी है। कहा जाता है कि सावित्री ने सत्यवान के मृत शरीर को एक बरगद के पेड़ के नीचे रखकर यमराज के पीछे चली थी, और अंत में अपने पति का जीवन वापस प्राप्त करने में सफल हुई थी। वट-सावित्री-व्रत इस विश्वास के साथ रखा जाता है कि व्रत

के पुण्य-प्रताप से व्रती स्त्री का पति दीर्घायु बनेगा। तीन दिन के इस व्रत में सुहागिन स्त्रियां पहले दो दिन फलाहार करके और तीसरे दिन निराहार रहकर व्रत का पालन करती हैं। व्रत के अंतिम दिन ये स्त्रियां बड़ी-बूढ़ी सुहागिनों का चरण छूकर अपने सौभाग्य और पति के दीर्घ जीवन की कामना के साथ व्रत का समापन करती हैं।

बरगद का पेड़ विशाल और चिरंजीवी होता है। यह वृक्ष अमरत्व का प्रतीक माना जाता है। प्रयाग का अक्षयवट कई कल्पों से जीता आ रहा माना जाता है। बरगद का दूध कमर-दर्द और गठिया की सूजन में लाभदायक बताया जाता है। इसके दूध से पांव की बेवाई और दांत-दर्द को आराम मिलता है। इसकी कच्ची कोंपलों में जननशक्तिवर्द्धक गुण बताये जाते हैं। इन विशेषताओं से बरगद का वृक्ष पूजनीय हो ही जाता है।

बरगद-पीपल परिवार का एक और वृक्ष है जो हिन्दुओं द्वारा, विशेषकर कृष्ण-भक्तों द्वारा पवित्र माना जाता है। यह वृक्ष है—कृष्ण वट या 'फाइकस कृष्णी'। इस वृक्ष की पत्तियां पीछे से मुड़ी हुई होती हैं और एक दोने की शक्ल की होती हैं। इनमें पांच-छः चम्मच द्रव पदार्थ भरा जा सकता है। कहा जाता है कि श्रीकृष्ण भगवान इन्हीं पत्तियों में दूध-दही-मक्खन लेकर खाया करते थे। इसलिए कृष्ण भगवान की स्मृति में यह वृक्ष भी पूजनीय माना जाता है। श्रीकृष्ण से ही जुड़ा एक अन्य वृक्ष है—कदम्ब का वृक्ष। इस वृक्ष की झुकी डालियों के सामने हम भी श्रीकृष्ण लीला को याद करके नतमस्तक हो जाते हैं।

पूजा और व्रत से जुड़ा हुआ एक अन्य वृक्ष है—आंवला। फाल्गुन एकादशी को 'आंवला एकादशी-व्रत' के अवसर पर इस वृक्ष की पूजा की जाती है। कहा जाता है, भगवान विष्णु ने आंवले के पेड़ के नीचे बैठकर मोक्ष की चर्चा की थी। उत्तर भारत में किसी विशेष एकादशी के दिन आंवले के पेड़ के नीचे खाना बनाकर वनभोज किया जाता है। आंवले के पेड़ का धार्मिक महत्त्व जो भी हो, उसके फलों में जो औषधीय गुण पाये जाते हैं, वे हमारे लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। आंवला विटामिन 'सी' का सबसे बड़ा स्रोत माना जाता है। आंवला खाने से यौवन अधिक दिन तक स्थायी रहता है, वृद्धता धीरे-धीरे आती है और संभवतः दीर्घजीवन भी प्राप्त होता है।

कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में नीम के पेड़ की पूजा की जाती है। इस पेड़ का संबंध देवी माता से जुड़ा हुआ है। संभवतः चेचक, जिसे माता की बीमारी कहा जाता था, का कुछ शमन नीम की पत्तियों से होता था। नीम में रोगाणुनाशक गुण होने के कारण, इस वृक्ष के प्रति भी मनुष्य हमेशा से कृतज्ञ रहा है।

पवित्र वृक्षों की सूची में एक अन्य

महत्त्वपूर्ण नाम है—गोरख इमली या गोरखचिंच का। जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, इसका संबंध नाथ सम्प्रदाय के गुरु गोरखनाथ से जुड़ा है। उनके अनुयायियों के लिए यह एक पवित्र वृक्ष है। इसके फलों से वे कमंडल बनाते हैं। महराष्ट्र में गोरखचिंच की पूजा संतान-प्राप्ति की कामना से की जाती है। गोरखचिंच या 'एडन्सोनिया डिजिटेटा' हजारों वर्षों तक जिन्दा रहने वाला पेड़ है।

जिन स्त्रियों के बच्चे जिन्दा नहीं रहते, वे एक विशेष वृक्ष, 'पुत्रजीवा' की पूजा करती हैं। पुत्रजीवा-वृक्ष के फलों की माला बनाकर वे अपने बच्चों को इस विश्वास से पहनाती हैं कि माला हमेशा बच्चों की जीवन-रक्षा करेगी।

पवित्र और पूजनीय वृक्षों की सूची काफी बड़ी है। सीता अशोक (सराका इंडिका) वृक्ष की पूजा इस विश्वास के साथ की जाती है कि यह वृक्ष शोक या दुःख दूर करने वाला है। अफ्रीका में किसी के बीमार पड़ने पर कपास के पेड़ की पूजा की जाती है। यूनान में ओक ट्री, ओलिव ट्री, पोप्लर ट्री और सेब के पेड़ को पवित्र समझा जाता है। कम्बोडिया में फालसा जाति के एक वृक्ष 'तालोक ट्री' की पूजा की जाती है। इस प्रकार अलग-अलग धर्मों में विभिन्न वृक्षों को पवित्र मानकर उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त की जाती है।

जनश्रुति के आधार पर चमत्कारिक मान लिये जाने वाले वृक्षों और किसी स्थान विशेष पर उगे वृक्षों को भी पवित्र मानकर पूजा की जाती है। कहा जाता है कि अकबर के दरबारी संगीतज्ञ तानसेन के मकबरे पर एक वृक्ष उगा हुआ है। जनश्रुति के आधार पर यदि कोई व्यक्ति इस वृक्ष की पत्तियां खा ले, तो उसका गला तानसेन जैसा ही मीठा हो जाता है।

किसी वृक्ष की पूजा के पीछे कौन-सी धारणा है, इसके बारे में भिन्न मत हो सकते हैं। पर, वृक्षों का जो सार्वभौमिक महत्त्व रहा है, उसके आधार पर सभी वृक्ष हमारे लिए पूजनीय हैं।

भोजन, वस्त्र, मकान की आवश्यकता पूरी करने में वृक्षों का सर्वाधिक योगदान तो है ही, आज की औद्योगिक सभ्यता के अभिशाप को मिटाने के लिए, प्रदूषण दूर कर एक सुन्दर-स्वस्थ वातावरण बनाने के लिए वृक्ष हमारे लिए अत्यावश्यक हैं। खेद का विषय है कि आज इनकी संख्या कम होती जा रही है, जिसका दुष्परिणाम हमारे सामने आ रहा है। अतः आज एक बार फिर वृक्षों की पूजा करने का समय आ गया है। वृक्ष लगाना पुण्य का काम है। कहा गया है कि—

दश कूप समं वापी, दश वापी समं ह्रदः।
दश ह्रदः समं पुत्रः, दश पुत्रः समं द्रुमः॥

इसलिए भारी संख्या में वृक्ष लगाइये और पुण्य कमाइये।

—२७ अलकनन्दा, अणुशक्ति नगर,
बम्बई—४०००९४

□

नववर्ष की भारतीय परम्परा

□ हंस

०००

नये अंग्रेजी सन की शुरूआत १ जनवरी से होती है। किंतु भारत के नववर्ष–नये विक्रमी संवत् की शुरूआत चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को होती है। नये अंग्रेजी सन के आरंभ के अवसर पर, पढ़िये विक्रम संवत् और उसके प्रवर्तक विक्रमादित्य की गौरवशाली गाथा।

०००

यद्यपि हमने अपने नव-संवत् की उपेक्षा कर, प्रति वर्ष १ जनवरी को आरंभ होने वाले नव-संवत् को अपना लिया है, संभवत: अंग्रेजी तिथियों की अपेक्षाकृत सरल गणना के कारण, तथापि गहराई से विचार करने पर ज्ञात होगा कि नववर्ष की भारतीय परम्परा पाश्चात्य पद्धति की अपेक्षा अधिक अचूक और वैज्ञानिक है।

ज्योतिषशास्त्र के प्राचीन ग्रंथ 'सूर्य-सिद्धांत' के अनुसार काल की परिभाषा के अनुसार, एक काल मानव का उत्कर्ष-वाची है, तो दूसरा संसार का नाशवाची।

प्राचीन भारतीय कालगणना-पद्धति के अनुसार, काल के दो सूक्ष्मतम मान थे : त्रुटि और तत्परस। एक दिन-रात में १७ अरब, ४९ करोड़ ६० लाख त्रुटियां या ४६ अरब, ६५ करोड़, ६० लाख तत्परस होते हैं। आधुनिक वैज्ञानिकों को सूक्ष्मतम यंत्रों की सहायता से ९ करोड़, १९ लाख, ३१ हज़ार, ७७० भागों को सफलता मिली है, किन्तु प्राचीन भारतीय ऋषि (वैज्ञानिक) अपनी अचूक और सूक्ष्म गणनापद्धति के आधार पर यह विभाजन आज से हज़ारों वर्ष पूर्व ही कर चुके थे।

इस पद्धति के अनुसार, २ परमाणुओं के संयोग से एक अणु, और ३ परमाणुओं के संयोग से एक त्रसरेणु बनता है। तीन त्रसरेणुओं को पार करने में सूरज की किरण को पार करने में जितना समय लगता है, उसे त्रुटि कहा जाता है। १०० त्रुटि एक वेध, तीन वेध एक लव के समान, और ३ लव एक निमेष के बराबर हैं। ३ निमेषों से एक क्षण, ५ क्षणों से एक काष्ठा, १५ काष्ठाओं से एक लघ, और १५ लघुओं से एक नाड़िका का निर्माण होता है। ६ नाड़िकाओं से १ प्रहर, आठ प्रहरों से एक दिन-रात, और १५ दिन-रातों से १ पक्ष, २ पक्षों से १ मास, २ मासों से १ ऋतु, ६ मासों से १ अयन (उत्तरायण–दक्षिणायण) और २ अयनों का एक वर्ष होता है।

तत्परस-पद्धति पर आधारित काल-गणना भी अत्यन्त अचूक और सूक्ष्म है, और

इस प्रकार है : ६० तत्परस = १ परस, ६० परस = ५ विलिप्ता, ६० विलिप्ता = १ लिप्ता (विपल), ६० लिप्ता = १ विघटिका (पल), ६० विघटिका = १ घटिका, और ६० घटिका = १ दिन-रात।

काल ही आत्मा

महावीर की साधना-पद्धति में 'सामयिक' केंद्रीय शब्द है, जो समय (काल) से बना है। महावीर की मान्यता थी कि समय (काल) ही आत्मा है, और समय में खड़े होने और उसे पहचानने पर 'स्व' के दर्शन हो सकते हैं, 'स्व' को पहचान हो सकती है। लेकिन, उन्होंने यह भी कहा था कि समय को जानना बड़ी ही कठिन बात है, क्योंकि समय है वर्तमान, और हम या तो अतीत में होते हैं, या भविष्य में।

प्राचीन भारतीय ऋषियों ने वर्तमान में खड़े होकर कालगणना की उस सूक्ष्मतम और अचूक पद्धति का आविष्कार किया, जिसके आगे सूक्ष्मतम गगनयंत्रों से सुसज्जित आधुनिक वैज्ञानिक आज तक नहीं जा सके हैं।

इस सूक्ष्मतम काल-गणना के अतिरिक्त, हमारे पूर्वजों ने काल की महत्तम गगना कर, सृष्टि और पृथ्वी की आयु, राशिमंडल, नक्षत्रमंडल और सौरमंडल की वक्र, अनुवक्र आदि विभिन्न गतियों में विद्यमान नियम का पता लगाने के अलावा सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण आदि की भविष्यवाणियां भी की थीं।

भारतीय नववर्ष-तिथि

शुद्ध कालगणना के लिए हमारे देश में इन नौ पद्धतियों पर निर्भर रहा जाता है : ब्राह्म, दिव्य, पित्र्य, प्रजापत्य, बार्हस्पत्य, नाक्षत्र, सौर, चांद्र और सावन। प्रजापत्य-पद्धति का प्रयोग वर्ष के शुभाशुभ-परीक्षण के लिए किया जाता है, और सावन-पद्धति का प्रयोग तिथिवृद्धि और तिथिक्षय तथा दो अमावस्यों के बीच सूर्यसंक्रांति न होने पर संक्रांतिहीन मास के आधिक्य (अधिक मास) की तारतम्यता स्थापित करने के लिए किया जाता है। इसी शुद्धता के परिणामस्वरूप, तिथि घटे या बढ़े, सूर्यग्रहण अमावस्या को ही, और चन्द्र-ग्रहण पूर्णिमा को ही होगा। मकर-संक्रमण सदा १४ जनवरी को ही आयेगा। इसमें प्रत्येक ६९ वर्ष बाद आने वाला अंतर, पाश्चात्य काल-गणना की त्रुटिपूर्ण और समंजन पद्धति के कारण ही होता है, भारतीय काल-गणना की किसी चूक के कारण नहीं। इस प्रकार, वर्ष-प्रतिपदा भारतीय कालगणना की अचूकता और वैज्ञानिकता को प्रमाणित करने वाली नववर्ष तिथि है।

भौगोलिक कर्क-रेखा पर स्थित उज्जैन को हमारे पूर्वजों ने कालगणना का केन्द्र निर्धारित किया था। वहीं कालद्योतक स्वयंभू श्री महाकालेश्वर वास करते हैं। वे अनादि-काल से कालगगना के केन्द्रबिन्दु रहे हैं। प्राचीन काल में उनके मंदिर के निकट एक वेधशाला थी। बाद में जयपुर के सवाई राजा जयसिंह ने जयपुर, उज्जैन,

काशी, दिल्ली तथा मथुरा में वेधशालाओं की स्थापना की।

महाकालेश्वर के मंदिर की स्थापना ई. पूर्व. प्रथम शताब्दी के विक्रम संवत् प्रवर्तक शकारि विक्रमादित्य ने की थी। शकों पर विजयप्राप्ति के उपलक्ष्य में विक्रमादित्य ने विक्रम संवत् का प्रारंभ किया था।

हिन्दुओं के शास्त्रों के अनुसार, संवत्सर आरंभ करने का अधिकार उसी राजा को होता है, जिसके राज्य में किसी भी व्यक्ति पर किसी का कोई ऋण न हो। आज से २०३८ वर्ष पूर्व, मालवाधीश, सम्राट श्रेष्ठ विक्रमादित्य ने अपने राज्यकोष से इस राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को ऋण-मुक्त कर, नवसंवत्सर-जन्मदाता होने का अपूर्व गौरव प्राप्त किया था।

भारत के परम वैभव का स्मृति-दिवस है—विक्रम संवत्, जो उस प्रतापी शासक की स्मृति में मनाया जाता है, जिसने मात्र ३५ वर्ष की अल्पावधि में हमारे देश को परम वैभव के शिखर पर पहुंचाकर दिखा दिया था। (चैत्र-प्रतिपदा से आरंभ होने वाले विक्रम संवत् को हमारे देश के विभिन्न भागों में 'गुड़ी पड़वा', 'चैती चांद' व 'संवत्सर' के रूप में मनाया जाता है।)

और, आज वही देश, जिसने वह गौरवमय दिन भी देखा, जब, समृद्धि के कारण राजकोष में अपार धन था, और किसी भी देशवासी पर किसी का कोई ऋण नहीं था, विदेशी ऋण के असह्य भार के नीचे दबा है। सोचकर, मन दुख और ग्लानि से भर आता है।

चित्र : आर. डी. पुरोहित

□

एक बार पिकासो को कपड़े टांगने की आलमारी बनवानी थी। वे एक फर्नीचर बनाने वाले के पास गये और उसे अपनी आवश्यकता बताकर बोले कि लकड़ी महोगनी की होनी चाहिये। आलमारी की डिज़ाइन अच्छी तरह बताने के लिए उन्होंने एक कागज़ उठाया और उस पर आलमारी की रूप-रेखा बना दी। फिर उन्होंने पूछा, 'इस आलमारी की कीमत क्या होगी?' 'जी कुछ नहीं, आप बस इस कागज़ पर दस्तखत कर दीजिये।' जवाब मिला।

—डा. गोपालप्रसाद 'वंशी'

□

चीनी लोककथा

दो मूर्ख

□ सुरजीत

किसी गांव में एक आदमी रहता था। उसका नाम था लीन! लीन को एक दिन गिरे पड़े दस रुपये मिल गये। उसने आज तक दस का नोट नहीं देखा था। नोट पाकर वह पहले तो बहुत खुश हुआ। फिर यह खयाल सताने लगा कि इस खज़ाने को रखूंगा कहां? किसी ऐसी जगह छुपाना चाहिये, जहां किसी की नज़र न पड़े, नहीं तो कोई चुरा लेगा।

सोच-सोचकर लीन का बुरा हाल हो गया। झोपड़ी में कोई सुरक्षित स्थान नज़र न आया। आखिर उसे एक तरकीब सूझी। क्यों न झोंपड़ी की दीवार में सूराख करके, उसमें नोट रखकर, ऊपर से लेप कर दिया जाये। तरकीब अच्छी थी। उसे पसंद आयी।

उसने झोंपड़ी का दरवाज़ा बंद कर लिया और दीवार को खोदने लगा।

खुशी और भय के मारे वह कांप रहा था। कई बार काम बंद करके बाहर झांका। कहीं कोई देख तो नहीं रहा? कोई सुन तो नहीं रहा कि लीन रुपया छुपा रहा है?

जब कच्ची दीवार में सूराख हो गया, तो लीन ने उसमें दस का नोट ठूंसकर ऊपर से कीचड़ का लेप कर दिया।

उसके बाद वह झोपड़ी के बाहर बैठकर पहरा देने लगा, ताकि कोई अंदर न आये। वह सोच रहा था, जो कोई भी अंदर आयेगा, मुझसे पूछेगा—'लीन, यह दीवार गीली-गीली क्यों है? ज़रूर दाल में कुछ काला है? कोई चीज़ छुपा रखी है तुमने!'

और फिर वह रुपये चुरा लेगा। इस डर से लीन झोंपड़ी के बाहर उस समय तक बैठा रहा, जब तक दीवार पर लगी गीली कीचड़ सूख नहीं गयी।

इतना कुछ कर लेने के बाद भी उसकी तसल्ली नहीं हुई। अब उसे एक और वहम सताने लगा—मान लो, चोर उसके दस रुपये चुराने के लिए अंदर आ जाते हैं। वह कहां ढूंढेंगे? दीवारों के सिवा और कौन-सी जगह हो सकती है, जहां वह

तलाश करेंगे । सीधी-सी बात है कि चोर दीवार खोदेंगे । यह खयाल आते ही लीन के पसीने छूट गये । अब करे, तो क्या करे ? बहुत सोचा, दिमाग मारा ।

अब जो तरकीब दिमाग में आयी, तो वह खुशी से उछल पड़ा । भागा-भागा पड़ोसी के घर गया । रंग और ब्रुश मांग लाया और बड़ी सावधानी से उस जगह, जहां रुपये दबाये थे, बड़े-बड़े अक्षरों में लिख दिया—

'यहां कोई खज़ाना नहीं है !'

उसी गांव में एक और मूर्ख रहता था । उसका नाम था वान ! वान एक दिन लीन से मिलने आया । लीन को मौजूद न पाकर वान ने झोंपड़ी में झांका । लीन कहीं बाहर गया हुआ था । इधर-उधर देखते हुए वान की नज़र दीवार पर पड़ी । लिखा था—'यहां कोई खज़ाना नहीं है !'

वान हैरान-परेशान था । सोचने लगा, 'भला लीन ने यह बेवकूफी की बात क्यों लिखी ? उसके पास दौलत कहां से आयी, जो दीवार में छुपाये ? पर नहीं, उसने यह लिखा क्यों ? ज़रूर कोई बात है ।' यह खयाल आते ही उसने दीवार खोदकर रुपये निकाल लिये ।

दस रुपये पाकर वान की खुशी की सीमा न रही । वह उन्हें खर्च करने की

मैं एक ईमानदार आदमी हूं

तरकीबें सोच रहा था कि दिल का चोर उसे डराने लगा—'मान लो, किसी को पता चल गया कि रुपये मैंने चुराये हैं, तो क्या होगा ? थानेदार मुझे घसीटकर ले जायेगा और वह पिटाई करेगा, कि नानी याद आ जायेगी । और फिर ... फिर मुझे सच बोलना पड़ेगा, और फिर ... ?'

चिंता के मारे वान का दिल धड़कने लगा । अपने घर जाकर भी उसे शांति नहीं मिली । अचानक उसे एक तरकीब सूझी, और उसके चेहरे पर रौनक आ गयी ।

वह दौड़ा-दौड़ा गया । लीन की तरह ब्रुश और रंग मांग लाया और अपने झोंपड़े के दरवाज़े पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिख दिया—

'मैं एक ईमानदार आदमी हूं । मैंने लीन की दीवार में से रुपया नहीं निकाला !'

—सी-३४, सुदर्शन पार्क, नयी दिल्ली-११

□

फिल्मी सितारों के विवाह की खबर गुप्त नहीं रह पाती ।

क्यों ?

उनके तलाक की खबर तो अखबारों में आ ही जाती है ।

□

प्रकृति का अनुपम उपहार मधु

□

हफ़ीज़ अहमद खां

दुर्बलता दूर करने और तुरन्त शक्ति बढ़ाने के लिए मधु के समान गुणकारी संसार में अन्य कोई वस्तु नहीं है। एक छोटे चम्मच-भर मधु से मनुष्य को लगभग सौ कैलोरी (ऊष्मा) शक्ति प्राप्त होती है जो लगभग २५० ग्राम ताज़े फलों से प्राप्त शक्ति के बराबर होती है। मधु में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन 'ए' तथा विटामिन 'बी' जैसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व और पोटेशियम, मैंगनीज, फास्फोरस, कैल्शियम, लोहा, तांबा तथा गन्धक जैसे उपयोगी खनिज पदार्थ अधिक मात्रा में पाये जाते हैं।

रूस के बड़े-बड़े चिकित्सक और वैज्ञानिक मनुष्य की आयु बढ़ाने और रोगों को दूर करने पर कई वर्षों से अनुसंधान करते रहे हैं। वे ११० से १५० वर्ष की आयु के २०० रूसी मनुष्यों से उनकी लम्बी आयु प्राप्त करने का रहस्य पूछने के पश्चात इन निष्कर्षों पर पहुंचे हैं कि यह सब लोग प्रतिदिन पर्याप्त मात्रा में मधु का सेवन किया करते थे। विश्व प्रसिद्ध प्राचीन चिकित्सक हिप्पोक्रेट्स, जिसे आज भी 'फादर ऑफ मेडीसिन' कहा जाता है, १०१ वर्ष तक जीवित रहे। उसने अपने रोगियों को दीर्घायु होने और स्वस्थ रहने हेतु मधु का सेवन करने की सलाह दी थी। रोमन इतिहासकार प्लूटार्क ने भी लिखा है कि प्राचीन काल में ब्रिटेन के निवासी १२० वर्ष की आयु में वृद्ध हुआ करते थे जिसका प्रमुख कारण मधु का भरपूर सेवन करना था।

मधु की प्रकृति गर्म और शुष्क है। यह पाचन में वृद्धि करता है, कब्ज का नाश करता है और रक्त को शुद्ध करता है।

मधु को किसी भी समय और किसी भी ऋतु में सेवन से लाभ उठाया जा सकता है लेकिन प्रातःकाल खाली पेट मधु का उपयोग करना सबसे उत्तम है। मधु किसी अन्य खाद्य अथवा पेय वस्तु जैसे दूध, पानी, मीठे फल जैसे केला, मौसम्मी, सेब आदि के साथ सेवन करना अधिक लाभदायक होता है। दूध के साथ मिलाकर इसे सेवन करने से भोजन की आवश्यकता पूरी हो जाती है। पाइथोगोरस, जो लगभग ३००० वर्ष पूर्व यूनान का बहुत बड़ा दार्शनिक और गणितज्ञ था, बुढ़ापे में केवल दूध और मधु के अतिरिक्त कुछ अन्य चीज नहीं खाता था।

मधु का उपयोग सर्दी-जुकाम, खांसी

और टी. वी. (क्षय रोग) में बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। सर्दी या दुर्बलता के कारण हृदय की गति में अवरोध उत्पन्न हो जाय तो मधु का एक चमचा जीवन की एक नयी लहर दौड़ा देता है। जो लोग प्रतिदिन नियमपूर्वक थोड़े-बहुत मधु का सेवन करते हैं उनके फेफड़े इतने मजबूत हो जाते हैं कि उन्हें फेफड़े के रोग होते ही नहीं।

इस संदर्भ में एडिनबर्ग के डा. थामस कहते हैं कि हृदय की दुर्बलता की गम्भीर बीमारियों में मैंने मधु को बहुत लाभप्रद पाया है। जब शरीर की शक्कर नष्ट होने लगती है तो मैं शारीरिक-सुधार या विशेष रूप से हृदय की गति को बन्द हो जाने से रोकने के लिए मधु देने की सिफारिश करता हूं।

मधु बलगम को हटाता है। मधु में चौथाई नीबू का रस मिलाकर पीने से फेफड़ों की वायु-प्रणालियों की सूजन से होने वाली कष्टदायक खांसी दूर हो जाती है। दमा के रोगी को गर्म पानी में मधु मिलाकर पिलाते रहने से उसका यह रोग दूर हो जाता है। मधु में गर्म सिरका मिलाकर मुंह में रखने से गला रुक जाना गले की सूजन, बोल न सकने में आराम आ जाता है।

पेचिश, टायफाइड, पाण्डु रोग में रक्त आने पर मधु पिलाते रहने से रक्त-स्राव बन्द हो जाता है और आमाशय तथा आंतों के घाव ठीक हो जाते हैं। डॉ. शॉट लिखते हैं कि टायफाइड और पेचिश जैसे संक्रामक रोगों के कीटाणु मधु में पड़ते ही मर जाते हैं। इन रोगों में मधु का सेवन बहुत ही लाभदायक है।

मधु शक्तिवर्धक है। रोम और यूनान में प्राचीन काल में मधु से बीयर जैसी शराब बनायी जाती थी। वहां के नवयुवक विवाह होने पर यह शराब पीते थे। इसी कारण तभी से विवाह के प्रारंभ के दिनों को 'हनीमून (मधुयामिनी) कहा जाता है।

मधु पाचन को तीव्र करता है। रात को सोते समय एक चम्मच मधु ठंडे जल में पीने से कब्ज अच्छा हो जाता है। गुनगुने पानी में मधु और नीबू का रस मिलाकर दिन में दो या तीन बार पीने से ज्वर का वेग कम हो जाता है। ग्रीष्म ऋतु में गर्म स्वभाव वालों के लिए यह हानिकारक है। बहुत सवेरे गर्म जल में मधु मिलाकर पीने से शरीर की अतिरिक्त चर्बी नष्ट होती है और मोटापा दूर होता है।

मधु को घी या मक्खन में मिलाकर खाना शक्तिवर्धक होता है। लेकिन ये चीजें मधु से भार में तुल्य न हों। गर्म स्वभाव वाले तीन भाग मक्खन और एक भाग मधु, बादी स्वभाव वाले तीन भाग घी और एक भाग मधु, और बलगमी स्वभाव वाले एक भाग घी और तीन भाग मधु मिलाकर सेवन कर सकते हैं।

—पोस्ट-रन्नौद, जिला-शिवपुरी (म. प्र.)
पिन – ४७३७८१

□

नोबेल पुरस्कार विजेता का आत्मकथ्य

□ जान स्टीनबेक

'ईस्ट ऑफ ईडन' लिखते समय मेरे मन में दो प्रवृत्तियां निरन्तर प्रवहमान थीं। एक थी, सृजन की दुनिया में स्वच्छंद विचरण करने की, और दूसरी थी, अपने मित्र पास्कल काविकी को पत्र लिखकर, उपन्यास लिखने की तैयारी करने की। पहली प्रवृत्ति से 'ईस्ट ऑफ ईडन' का जन्म हुआ, और दूसरी प्रवृत्ति से मुझे अपनी दृढ़ धारणाओं को व्यक्त करने का अवसर मिला।' (जॉन स्टीनबैक : जर्नल ऑफ ए नॉवल : ईस्ट ऑफ ईडन लैटर्स।)

'ईस्ट ऑफ ईडन' उपन्यास (जिस पर मुझे नोबेल-पुरस्कार प्रदान किया गया था) लिखते समय मेरे मन में दो प्रवृत्तियां निरन्तर प्रवहमान रहती थीं। एक थी, सृजन की दुनिया में स्वच्छंद विचरण करने की, और दूसरी थी, अपने मित्र पास्कल काविकी को पत्र लिखकर उपन्यास लिखने की मानसिक तैयारी करने और उसे अपनी विभिन्न धारणाओं के बारे में बताने की। पहली प्रवृत्ति से 'ईस्ट ऑफ ईडन' का जन्म हुआ, और दूसरी प्रवृत्ति से मुझे अपनी दृढ़ धारणाओं को व्यक्त करने का अवसर मिला। अपने घनिष्ठ मित्र को पत्र लिखने की प्रेरणा मुझे एमर्सन ने प्रदान की थी, जो अपनी सृजन-प्रक्रिया के अवरुद्ध हो जाने पर, अपने किसी प्रिय मित्र को पत्र लिखने बैठ जाते थे।

मेरे प्रिय मित्र पास्कल काविकी एक नामी सम्पादक थे। उन्होंने १०¾"×१४" आकार के रूलदार कागज़ों का एक बंडल दे दिया था। इन पर मैं पहले पास्कल को दो पत्र लिखता था, और बाद में दो पृष्ठों में उपन्यास के प्रायः १५०० शब्द पूरे करता था।

पास्कल को पत्र लिखना अपने को उपन्यास-लेखन के लिए गरमाने की मात्र एक विधि थी। इन पत्रों में मैं कभी-कभी उपन्यास के पात्रों और विषय की चर्चा भी करता था, मगर प्रायः इन पत्रों में मैं अपने परिवार के सदस्यों और अपने शौकों के बारे में ही लिखता था। उन्हें मेरी आत्मकथा के अंश भी माना जा सकता है।

पाठक 'ईस्ट ऑफ ईडन' के प्रकाशित पाठ और पृष्ठों में लिखे गये पाठ में कहा-कहीं बहुत अंतर पायेंगे। इसका कारण यह है कि प्रकाशन के लिए दी गयी पांडुलिपि में मैंने अनेक परिवर्तन किये थे।

'ईस्ट ऑफ ईडन' का प्रकाशन १९५२ में हुआ था, मेरे इसके पहले के उपन्यास 'द ग्रेप्स ऑफ रैथ' के प्रकाशन के १३ वर्षों के वाद। इससे पूर्व, मेरी ये कृतियां प्रकाशित हो चुकी थीं : 'द मून इज़ डाउन', 'द पर्ल', 'कैनेरी रो' और 'द वेवर्ड वस' आदि। १९६२ में, नोवेल पुरस्कार जीतने के वाद, मैंने १९६१ में 'द विन्टर ऑफ डिस्कन्टैन्ट' की रचना की।' (स्टीनवैक का निधन २० दिसंबर, १९६८ में हुआ, और 'द विन्टर ऑफ डिस्कन्टैन्ट' उनका अंतिम उपन्यास था। उनके प्रिय मित्र पास्कल का निधन १९६४ में हुआ था।)

'जर्नल ऑफ ए नॉवेल' के कुछ अंश

२९ जनवरी, १९५१
(सोमवार)

प्रिय पैट,

क्या मेरी तरह तुम्हें भी नहीं लगता कि वक्त बड़ी तेजी से गुज़रता जाता है। कहते हैं वक्त आदमी को अधिक वुद्धिमान और अनुभूतिक्षम वनाता है। क्या सचमुच ऐसा होता है? मैं नहीं जानता। मैं तो सिर्फ यह जानता हूं कि मेरी और तुम्हारी मित्रता सदियों पुरानी है।

अव कुछ उस उपन्यास (ईस्ट ऑफ ईडन) की वात करूं, जिसे लिखने का सपना मेरे मन में वर्षों से पल रहा था। कमाल यह है कि जब मैंने इसे लिखने की योजना वनायी, तव मेरे मन में कुछ भी स्पष्ट नहीं था कि मैं क्या लिखूंगा? जव विषय कुछ स्पष्ट हुआ, तो वह इतना अनजाना-सा था कि उसे प्रस्तुत करने के लिए मुझे एक विशेष भाषा का आविष्कार करना पड़ा, ऐसी भाषा, जिसका प्रयोग संभवतः मैं अपनी अन्य किसी कृति के लिए नहीं कर पाऊंगा। कथा-वस्तु की कल्पना करने और उस कल्पना को शब्दों में साकार करने के वीच एक लंवा अंतराल है, जिसका मुझे अहसास है। लेकिन, साथ ही इस वात का भी अहसास है कि उपन्यास के लेखन का सही समय अभी ही आया है। यदि समय से पूर्व, मैं इसे लिखता, तो कोई न कोई उपन्यास तो अवश्य लिखा जाता, लेकिन वह निश्चित रूप से मेरी कल्पनाओं को मूर्त्त करने वाला उपन्यास न होता।

चित्र : आर. डी. पुरोहित

एक कष्टदायक अहसास मुझे और हो रहा है। वह यह कि मेरी सब कृतियों में यह आगामी कृति सवसे ज्यादा मुश्किल होगी। इस 'कठिन' उपन्यास के साथ मैं न्याय कर पाऊंगा या नहीं, यह देखना शेष है। वैसे, इस 'कठिन' कृति के सृजन के लिए जिस प्रकार की पृष्ठभूमि चाहिये,
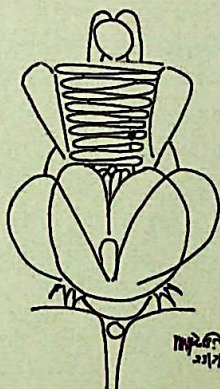
वह मेरे पास है, क्योंकि मैंने प्रेम को भी भोगा है, और कष्ट को भी। मेरे अंदर क्रोध है, लेकिन कटुता बिलकुल नहीं है। कटुता को पालने के लिए जिस अहंता की ज़रूरत होती है, उससे मुझे छुटकारा मिल चुका है।

मेरे पिछले कुछ वर्ष बड़ी तकलीफ़ में बीते। मालूम नहीं, उस तकलीफ़ का मुझ पर कोई स्थायी प्रभाव हुआ है या नहीं। मगर, तकलीफ़ों की वजह से मेरे अंदर बदलाव तो आया है। मैं आशा करता हूं कि इस बदलाव की वजह से मैंने कुछ पाया ही है, कुछ खोया नहीं।

दो दिनों के अंदर मैं अपनी पत्नी एलेन के साथ अपने नये घर में चला जाऊंगा, जहां मेरा लिखने का अलग कमरा होगा, और मैं प्रेम से घिरा रहूंगा। वहां, संभवतः मैं, इस उपन्यास को पूरा कर सकूं। यदि मैं इसे लिख या पूरा नहीं कर पाया, तो कोई बहाना पेश नहीं करूंगा, उसमें पूरा दोष मेरा ही होगा।

जहां तक इस आगामी उपन्यास के प्रकार का प्रश्न है, वह सीधा-सरल होगा, सनसनीखेज़ नहीं। जिस जीवन-दर्शन पर उपन्यास की कथा आधारित होगी, वह पुराना होते हुए भी, कम से कम मेरे लिए तो नया ही है। लेखन किफ़ायती और अत्यल्प होगा। एक अर्थ में, यह उपन्यास दो समांतर कहानियां सुनायेगा : एक मेरी और एक मेरे देश की। शायद मैं इन दोनों का अलग-अलग प्रकाशन करवाना चाहूं; मगर इसका निश्चय तो मैं उपन्यास के पूरा हो जाने के बाद ही करूंगा। और, जिस दिन यह उपन्यास पूरा होगा, मुझे लगेगा, जैसे मुझसे मेरा एक अंश जुदा हो गया है।

मैं यह उपन्यास अपने पुत्रों के लिए लिख रहा हूं। वे अभी छोटे हैं, लेकिन बड़े होकर जब इस उपन्यास को पढ़ेंगे तो उन्हें मालूम पड़ेगा कि मैंने जीवन से क्या सीखा है, और मैं उन्हें क्या सिखाना चाहता हूं। और चूंकि मैं चाहता हूं कि वे उसे वयस्क होने पर शीघ्रातिशीघ्र पढ़ें इसलिए मैंने जानबूझकर उसकी भाषा सीधी और सरल रखी है। वे इस उपन्यास को जब पढ़ेंगे, तब श्रेष्ठ साहित्यिक कृतियों से उनका परिचय नहीं हुआ होगा। मैं चाहता हूं कि बिना किसी साहित्यिक पृष्ठभूमि के ही वे पाप और पुण्य, प्रेम और घृणा, सुंदरता और कुरूपता की इस कहानी को पढ़ें। अपने इस उपन्यास के माध्यम से मैं उन्हें बताना चाहता हूं कि प्रेम और घृणा, पाप और पुण्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और कैसे दोनों को न एक दूसरे से अलग किया जा सकता है, और न एक दूसरे के बिना रह सकता है।

मैं यह अजीबोगरीब और महान कथा उन्हें उस नदी की पृष्ठभूमि में सुनाऊंगा, जिसके किनारे मैं पैदा हुआ, पर जिसे मैं ज्यादा प्रेम नहीं करता, क्योंकि मैंने उसके अतिरिक्त अन्य नदियां भी देखी हैं। इस बात का पता मेरे लड़कों को बहुत दिनों

तक नहीं लगेगा, और बिना किसी के बताये लगेगा। बहुत-सी बातों का पता व्यक्ति को बड़ा होने पर, अपने आप, बिना किसी से पूछे और जाने, लग जाता है। यह एक ऐसा रहस्य है जो निःशब्द है, और लेखक इसी निःशब्द रहस्य को अपने शब्दों में व्यक्त करने का फूहड़ प्रयास करता है। यह प्रयास लेखक एकाकीपन में ही कर सकता है, क्योंकि वहीं उसे अज्ञेय को ज्ञेय करने की क्षमता प्राप्त होती है। यह एक असंभव काम है, और वही लेखक इस असंभव काम को संभव करके दिखा सकता है, जो यह मानकर चले कि यह असंभव संभव नहीं हो सकता। और, वही लेखक मेरे लेखे एक महान लेखक है।

'ईस्ट ऑफ ईडन' को आरंभ करते समय मुझे लग रहा है कि शायद एक ऐसी कथा-कृति होगी, जिसे मैं अपनी कह सकूंगा। मेरा ऐसा खयाल है कि प्रत्येक लेखक जीवन में सिर्फ एक ही ऐसी पुस्तक लिख पाता है, जिसे वह अपना मान सके।

१२ फरवरी, १९५१ (सोमवार)

आज नये मकान में, लिंकन की जन्म-तिथि पर, और अपनी ४९ वीं वर्षगांठ से दो सप्ताह पूर्व, मैं 'ईस्ट ऑफ ईडन' की शुरूआत कर रहा हूं। मैं काफ़ी स्वस्थ और तरोताज़ा हूं, लेकिन वजन ज्यादा होने की वजह से जल्दी हांफ जाता हूं। मुझे वज़न घटाने की कोशिश करनी चाहिये और ज्यादा पीने पर भी अंकुश लगाना होगा। कामवासना मेरी नार्मल है, शायद इसलिए कि वह एक ही स्रोत से पूरी हो जाती है।
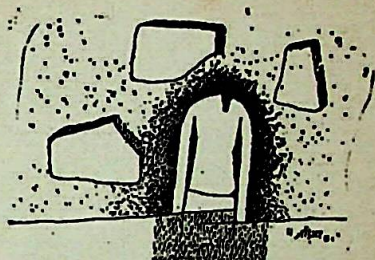
उपन्यास का आरंभ करते समय मैं बड़ा विनम्र अनुभव कर रहा हूं। साथ ही अशांत भी, क्योंकि इस उपन्यास का लेखन एक चुनौती बनकर मेरे सामने आया है। कोई बाहरी शक्ति ही मुझे इस चुनौती को पूरा करने में समर्थ बनायेगी।

जब मैंने इस उपन्यास की योजना बनायी थी, तब मैंने सोचा था कि इसमें एक बिलकुल नयी भाषा का प्रयोग करूंगा, नये-नये प्रतीकों का सहारा लूंगा, तथा कुछ ऐसी युक्तियों पर भी अवलम्बित रहूंगा, जिनकी कल्पना मैंने पहले कभी नहीं की थी। मगर, अब पुस्तक आरंभ करते समय मुझे लग रहा है कि जो कुछ सोचा था, उसका कोई उपयोग नहीं हो सकेगा, क्योंकि मैं इस उपन्यास को दुरूह नहीं, अत्यन्त सरल बनाना चाहता हूं। जहां तक शैली का प्रश्न है, कोई पूर्व निर्धारित शैली लेखन पर थोपना अन्याय-पूर्ण होगा। जैसे-जैसे उपन्यास अपनी स्वाभाविक गति से आगे बढ़ेगा अपनी शैली स्वयं निश्चित कर लेगा।

मैंने तय कर लिया है कि मैं उपन्यास की शुरुआत कैसे करूंगा ? मैं पहले अपने बेटों को स्थापित करने का प्रयास करूंगा। फिर मैं उन्हें बताऊंगा कि मैंने वह उपन्यास उनके लिए क्यों लिखा है ? फिर मैं उन्हें उनके वंश के बारे में बताऊंगा। इसके बाद मैं उनके सामने पेश करूंगा—सालिनास घाटी, उसके दृश्य, उसकी ध्वनियां, उसके रंग, उसकी गंध।

(मूल उपन्यास इसी प्रकार आरंभ हुआ था, लेकिन बाद में, उसमें अनेक परिवर्तन हुए, और उसका ढांचा ही बदल गया।)

१३ फरवरी (मंगलवार) :

किसी भी उपन्यास या कहानी की पहली पंक्ति को लिख पाना मेरे लिए बड़ा कष्टदायक काम है। दहशत, प्रार्थना और अनिश्चय के अनेक दौरों से गुज़रना पड़ता है मुझे। लिखना औरों के लिए सरल और स्वाभाविक कार्य भले ही हो, मेरे लिए बड़ा रहस्यमय और दुष्कर कार्य है। मेरे चारों ओर शब्द बिखरे पड़े हैं, लेकिन जब उन्हें चुनने का समय आता है, तो वे न जाने कहां गायब हो जाते हैं। और कभी-कभी पुराने-परिचित शब्द बेकार से भी लगते हैं। लेकिन नये शब्द आयें कहां से ? नये शब्दों को गढ़ने की सामर्थ्य हम लेखक लोग खोते जा रहे हैं।

...लिखना आरंभ करते समय मुझे कभी-कभी लगता है कि न जाने कौन लिख रहा है, और मैं उसे लिखते देख रहा हूं ?

ooooooooooooooooooooooooooo

पुलक-छंद

काढ़ गयी
धूप-दिवस कुरते पर
किरनीले-बूटे।

घर की सूनी
मगरी पर कागा बोला
झुलनी का
हर मोती पारद सा डोला
कजरारे
नयनों से तरुण-तीर
सैनों के छूटे।

सुशिक्षित
सुगना की मिठबोली बातें
भावुक मन
भूल गया सुन पिछली घातें
अरुणारे
अधरों से पुलक-छंद
सोतों से फूटे।

—डा. इसाक 'अश्क
शुजालपुर मंडी, शाजापुर, म. प्र

ooooooooooooooooooooooooooo

कौन है वह, जो लिखता है ? मनोवैज्ञानिकों की बात मानें, तो जो लिखता है, वह मैं ही हूं, मेरा अवचेतन मन ? अपने इस अवचेतन में झांकते मुझे बड़ा डर लगता है, क्योंकि तब मैं अपने व्यक्तित्व की अनेक पर्तें खुलती देखता हूं, और इन पर्तों में मैं क्रूर, हिंसक, अमानवीय सब कुछ हूं।....

□

एक अलिखित संस्मरण

महाप्रभु का अंतिम संदेश

□ लाडली मोहन

०००

अब से ढाई हजार वर्ष पहले महाप्रभु बुद्ध का शांति पर दिया हुआ सन्देश आज भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। आज भी विश्व को शांति की आवश्यकता है। यह बुद्ध का अन्तिम संस्मरण हरिद्वार में अचानक मिल जाने वाले एक बौद्ध भिक्षु के मुंह से सुनकर लिखा गया है। ध्यान रखना चाहिये कि बुद्ध का समस्त इतिहास जो आजकल पुस्तकों में प्राप्त है बौद्ध भिक्षुओं से सुन-सुनकर एवं शिलालेखों की सहायता से लिखा गया है। उस काल का कोई भी ऐतिहासिक ग्रन्थ प्राप्त नहीं है। भिक्षु समय-समय पर अपने शिष्यों को उपदेश देते रहे हैं। इन उपदेशों में महाप्रभु के सन्देश और जीवन गाथाएं भी रही होंगी। इस प्रकार उस काल के ऐतिहासिक तथ्य सही अथवा विकृत रूप में हमारे सामने हैं। आनन्द, बुद्ध के सर्वप्रिय शिष्य थे। जो अन्तिम समय में उनके पास थे। इसलिये यह संस्मरण उन्हीं के मुंह से सुनाया गया है।

०००

उस दिन पहली बार महाप्रभु ने अपना नियम भंग किया था। वैसे वह सूर्य निकलने से बहुत पहले उठ जाया करते थे परंतु उस दिन सूर्य निकल चुका था और किरणों में तेजी आ गयी थी। मैं और मेरे पांचों सहयोगी महाप्रभु के नेत्र खुलने की प्रतीक्षा कर रहे थे। सुबह उठते ही हम सब यात्रा प्रारंभ कर देते थे। यह यात्रा इतने नियमित रूप से होती थी कि उस दिन देर होने के कारण हमें बेचैनी होने लगी थी।

जिस समय उनकी आंखें खुलीं उस समय मैं भेड़ का दूध निकाल रहा था। मैं अधिक दूरी पर नहीं था, इसलिये वह मुझसे बोले, 'आनंद, आज बहुत थकावट जान पड़ रही है।'

'तब आज की यात्रा स्थगित कर दीजिये।'

'नहीं, आनन्द, यात्रा का अपने आप समाप्त होना ही अच्छा होता है। हमें उसे स्थगित करने का क्या अधिकार है।'

प्रभु के इस आदेश के साथ ही हमारी यात्रा प्रारम्भ हो गयी। हम मार्ग में बहुत कम बोलते थे। शायद नहीं। सामान भी हमारे पास कुछ नहीं होता था। वैसे तो पहली कुछ यात्राओं में हमने मिट्टी के

बर्तनों का उपयोग किया था परन्तु यह बर्तन अचानक मार्ग में टूट जाते थे और हमारा परिश्रम से एकत्र किया हुआ दूध बिखर जाता था। विरोधी लोग पत्थर मार-मारकर इन्हें तोड़ देते थे। जिससे हमें बड़ी असुविधा होती थी इसलिये हम इस बार लकड़ी के पात्र प्रयोग में ला रहे थे।

महाप्रभु अधिक नहीं चल सके और एक आम्र वृक्ष के नीचे बैठ गये। यहीं एक आम्र पत्र का दौना बनाकर मैंने उन्हें थोड़ा दूध दिया। यात्रा के बीच इस प्रकार वह नहीं रुकते थे इसलिये मन ही मन हम चिन्तित हो उठे। गाय का दूध हमें बहुत कठिनाई से मिलता था क्योंकि उन दिनों मगध में देवदत्त का बहुत प्रभाव था। देवदत्त ने बिम्बसार के लड़के अजातशत्रु को जादूगरी के करिश्मे दिखाकर अपने वश में कर लिया था। देवदत्त के कहने पर ही अजातशत्रु ने अपने पिता बिम्बसार को जेल में बन्द कर रखा था। बौद्ध धर्म अनुयायी बिम्बसार की मृत्यु जेल में ही हो गयी थी। देवदत्त ने ऐसा प्रबन्ध कर रखा था जिससे बुद्ध और उनके अनुयायिओं को खाने-पीने की वस्तुएं उपलब्ध न हो सकें।

दूध पीने से थोड़ा-सा सामर्थ्य आ जाने के कारण महाप्रभु ने यात्रा फिर आरम्भ कर दी। दिन के अवसान से पहले ही हम कुशीनारा पहुंच गये। कुशीनारा जंगल के बीच में बसा हुआ एक छोटा-सा कस्बा था। निचाई में बसा होने के कारण रास्तों में कीचड़ हो रही थी। पतझड़ प्रारम्भ हो गया था। पेड़ों पर हरे पत्ते कठिनाई से मिलते थे। मैंने एक दोहरे वस्त्र में थोड़ी-सी मुलायम पत्तियां भरकर प्रभु के लेटने के लिए स्थान बनाया। यह स्थान दो साल के वृक्षों के नीचे बनाया गया था। दोनों वृक्ष बिलकुल एक से थे। प्रभु का सिर उत्तर की ओर था।

मैं सिर को सहलाने के साथ-साथ उनके नेत्रों को भी देख रहा था जिनमें शान्ति और थकान का अजीब मिश्रण था। थोड़ी देर शान्त रहने के बाद प्रभु ने सभी साथियों से कहा, 'बस्ती में से भोजन की व्यवस्था कर लो।'

भोजन के लिए सबने अनिच्छा प्रकट की और प्रभु के चारों ओर बैठे रहे। उसी समय एक हवा का झोंका आया और पेड़ों की पत्तियां टूट-टूटकर प्रभु के ऊपर इस प्रकार गिरने लगीं मानों फूलों की वर्षा हो रही हो। हमें लगा कि जैसे एक स्वर्गीय संगीत बह रहा है। आंखों में कुछ गिर न जाये इसलिये मैंने उनके मुंह पर एक कपड़ा ढक दिया। उसी स्थिति में वह मुझसे कहने लगे, 'विश्व को भाईचारे का सन्देश केवल तुम्हीं पहुंचा सकते हो। आनन्द, मैं अब चल रहा हूं।'

मुझे लगा जैसे किसी ने मुझे निर्जीव कर दिया है। मैं वहां बैठा न रह सका। दूर जाकर रोने लगा। वे सदा के लिए अलग हो जायेंगे। यह विचार मेरे लिए बहुत ही कष्टदायक था।

प्रभु को मेरे उठ जाने का पता चल गया था। पूछने लगे, 'आनन्द कहां गया?'

मैं वहां पहुंचा तो बोले, 'दुखी मत हो, आनन्द! मैंने जीवन भर तुझे शांति का पाठ पढ़ाया है और अब जब मेरा चिर शांति का समय आ गया है तब तुम इस तरह रोते हो!'

महाप्रभु की अक्षरशः आज्ञा पालन करने की मेरी आदत बन गयी थी इसलिये ऊपरी तौर पर तो मैंने रोना बन्द कर दिया परन्तु मन रोता रहा।

रात्रि का प्रथम प्रहर था। हम वहां उजाले की व्यवस्था करना चाहते थे, पर हवा तेज थी इसलिये मैंने एक साथी से निरन्तर आग जलाने के लिए कह दिया। उस जली हुई आग के उजाले में मैंने महाप्रभु का चेहरा देखा तो सिहर गया। उनका मुंह खुल गया था और ओठों पर एक निरन्तर कंपकंपी आ गयी थी। लगता था मानो इस समय भी शांति पर कोई मौन सन्देश दिया जा रहा हो। सांस तेज हो गयी थी।

मैंने शीघ्रता से एक साथी को बस्ती और अन्य दो साथियों को मगध में सूचना देने के लिए भेज दिया।

उसके बाद मध्य रात्रि में उन्होंने पानी मांगा। मैंने दो घूंट पानी उनके मुंह में डाला तो वे उठने का प्रयत्न करने लगे। मेरे बहुत प्रयत्न करने पर भी न रुके, बोले, 'मैं मगध से आने वालों को देखना चाहता हूं, मुझे बैठा रहने दो। कमर के पीछे सहारा लगा दो। और देखो मार्ग बहुत कठिन है। अपनी महत्ता बनाये रखने के लिए कुछ लोग जातिगत विभिन्नता बनाये रखना चाहते हैं। तुम्हें इसके लिए बड़ा प्रयत्न करना होगा। सब समान हैं। भाई हैं। मिलजुल कर रहना चाहिये। प्राणी-मात्र को सताना नहीं चाहिये।'

अपने शब्दों की प्रतिक्रिया देखने के लिए महाप्रभु ने मुंह पर ढका हुआ कपड़ा हटा लिया और बोले, 'आनन्द, तुम बहुत वर्षों से मेरे साथ रहे हो। इस बीच तुम्हारी श्रद्धा और प्रेम को देखकर नतमस्तक हूं।'

इस समय तक मेरे दो साथी लौट आये थे। आते ही उन्होंने बताया कि समाचार मगध पहुंच चुका है। मगध जाने वाले दो घुड़सवार मिल गये थे और बस्ती में कोहराम मचा हुआ है। बस्ती में हमने केवल दस-पांच व्यक्तियों से ही कहा था परन्तु समाचार तूफान की तरह सारी बस्ती में फैल गया। घड़ी भर से पहले ही बहुत से साथी और नगरवासियों के आ जाने की संभावना है।

उसने यह भी बताया कि समाचार सुनकर बहुत-सी स्त्रियों ने अपने बालों को नोच डाला था और दीवारों पर सिर दे देकर मारने लगी थीं। इस समाचार से पहले आधी से अधिक बस्ती सो चुकी थी। बहुत से सोने का उपक्रम कर रहे थे परन्तु इस समाचार के बाद शायद ही कोई व्यक्ति सोता रहा हो।

मध्य रात्रि तक कई सौ व्यक्ति उस

स्थान पर एकत्र हो गये थे। सबसे आगे एक ब्राह्मण युवक था जो महाप्रभु से कुछ शंकाएं निवारण करना चाहता था। परंतु मैंने आज्ञा नहीं दी। मैंने उससे कहा कि तथागत में बोलने की शक्ति नहीं है। प्रभु को शायद आभास मिल गया था। मुझे बुलाया और ब्राह्मण युवक को प्रश्न करने की स्वीकृति दे दी। युवक के व्यवहार में उद्दंडता नहीं थी। बहुत ही संयत शब्दों में उसने प्रश्न किया था, 'शांति प्राप्ति का मार्ग जानना चाहता हूं।'

युवक के प्रश्न का उत्तर महाप्रभु का अन्तिम उत्तर था। अन्तिम सन्देश था। अन्तिम समाधान था। उन्होंने कहा :

'वही करो जो सही है। जिस कार्य को करने में मन न हिचकिचाये वही सही है। हृदय को पहचानने का प्रयत्न करो। हृदय की स्वच्छता शांति को जन्म देती है। दूसरों को दुख देने से शांति दूर भागती है। सताना हिंसा है।'

समुदाय शांत खड़ा था। तिनका भी गिर जाता तो आवाज़ हो जाती। यह मृत्यु की शांति थी। निश्छल और निश्चेष्ट। इस शांति में महाप्रभु का प्राणिमात्र को युगों-युगों के लिए सुधा-सिंचित सन्देश था।

इसके बाद तथागत नहीं बोले। मृत्यु से कुछ क्षण पहले उनके ओठ बुदबुदाये अवश्य थे। वह शायद अजातशत्रु के बारे में कुछ कहना चाहते थे, परन्तु ठीक समझ में नहीं आ सका। इसके बाद अहिंसा का सबसे पहला सन्देशवाहक सदा के लिए चल बसा। परन्तु विश्व को आज भी इसकी आवश्यकता है।

—११५१, ब्रह्मपुरी, मेरठ, उ. प्र.

□

तलवार को कुंद बना देना

एक गुलाम ने गुस्से में आकर बादशाह की हुक्म अदूली की और भाग गया। बादशाह ने उसे ढूंढ़कर लाने का हुक्म दिया। वह न मिला। जब वह खुद ही वापस लौट आया तो बादशाह ने उसे कत्ल करने का हुक्म दिया। जल्लाद जब अपनी तलवार म्यान से निकालकर उसकी गरदन उड़ा देने के लिए तैयार हुआ तो गुलाम ने खुदा से दुआ मांगते हुए कहा, 'ऐ मेरे ख़ुदा, तू मेरे उस बादशाह का गुनाह माफ कर देना जिसकी मैंने रोटियां खायी हैं और जिसके राज में मैंने सुख उठाया है। मेरे कत्ल के इल्जाम उसे सज़ा न दी जाये।'

गुलाम की यह दुआ बादशाह के कानों तक पहुंची तो उसका गुस्सा एकदम ठंडा हो गया। उसने गुलाम को माफ किया और उसे हाकिम बना दिया।

अगर गुलाम नरमी से काम न लेता तो वह अपनी गरदन कटवा डालता। उसकी नरमी ने ही बादशाह की गुस्से की तलवार को कुंद बना दिया था।

—मेवाराम गुप्त

□

हाथियों के खेल और खेलों में हाथी

□ रामकुमार

अपनी गति, चुस्ती और फुर्ती के लिए सुपरिचित घोड़ों का खेल पोलो, एक पुराना खेल है, जिसका आरम्भ एशियाई देशों में होना माना गया है। भारत में 'पोलो' के क्षेत्र में राजस्थान का अपना विशिष्ट स्थान रहा है। भारतीय टीमों ने पोलो में विश्व रिकार्ड कायम किये हैं और वर्षों तक पोलो की दुनिया में अपना वर्चस्व कायम रखा है। लेकिन १९६८ में इंग्लैंड में पोलो मैदान पर भारत को गहरी मात खानी पड़ी। जयपुर टीम—जो पोलो के क्षेत्र में सिरमौर टीम थी, के हार जाने पर इंग्लैंड के एक पत्र में दूसरे दिन एक व्यंग्य चित्र छपा—जिसमें हारी हुई टीम के खिलाड़ियों को हाथी पर सवार होकर पोलो खेलते हुए दर्शाया गया था। टीम के खिलाड़ी उस व्यंग्य-चित्र को अपने साथ लेकर आये।

उस व्यंग्य-चित्र की कल्पना ने हाथी-पोलो की शुरूआत के लिए खिलाड़ियों को प्रेरित किया। सन १९७६ में जयपुर में सम्पन्न घोड़ा-पोलो में जयपुर राजघराने के भू. पू. राजकुमार जयसिंह ने यह घोषणा की कि वे हाथी पोलो का आयोजन करायेंगे। इस परिप्रेक्ष्य में पहला हाथी-पोलो जयपुर के रामवाग पोलो-मैदान में खेला गया। इस अजीब किन्तु नयी शुरूआत के रोमांचक क्षणों को जीने के लिए एक लाख खेल प्रेमी पोलो मैदान में एकत्रित हुए थे।

अपनी मस्त चाल से चलने वाला हाथी—जो घने जंगलों में बिगड़ जाये तो सब कुछ तहस-नहस कर डाले, भयंकर युद्धों में दुर्गों के लोहे की शलाखों वाले द्वारों को तोड़ देने वाला हाथी, राजा महाराजाओं की शान-शौकत का प्रतीक—हाथी, हाथी के हौदों पर विवाहों में तोरण मारते समय अपने को गौरवान्वित समझने वाला हाथी, सर्कस में अपने करतव दिखाकर बच्चों और दर्शकों को रोमांचित कर देने वाला हाथी—अब इन परंपरागत टूटते संदर्भों से हटकर गति और चुस्ती से जुड़े हुए परंपरागत खेल-पोलो के मैदान में भी आ गया है।

हाथियों पर सवार होकर खेले जाने वाला हाथी-पोलो अपनी विशेषताओं के कारण दर्शकों का मन मोह लेता है। अनुशासनबद्ध होकर हाथी दर्शकों का अभिवादन करते हैं और फिर शुरू होता है—हाथी-पोलो का खेल। निश्चित बात है कि हाथी-पोलो को घोड़ों पर बैठकर खेले जाने वाले पोलो के संदर्भ में नहीं देखा जा सकता। हाथी पोलो का अपना अलग रंग और ढंग है।

अभी यह खेल नया है और हाथियों की देखभाल और पालना एक महंगा काम है। खेल को अधिक रुचिकर और आकर्षक बनाने का कार्य भी धीरे-धीरे ही किया जा सकता है। नियमित रूप से खेल का आयोजन इस दिशा में खेल को अच्छा बनाने के लिए आवश्यक है। इस खेल का इसकी अपनी विशिष्टताओं के संदर्भ में विकास किया जाये तो यह एक सफल खेल बन सकता है। परन्तु खेल प्रेमियों से हटकर आमतौर से इस खेल ने लोगों को आकृष्ट किया है। यही नहीं, राजस्थान पर्यटन विभाग ने हाथी-समारोह, हाथियों की दौड और हाथी-पोलो के वार्षिक आयोजन शुरू कर दिये हैं, जो पर्यटकों में अत्यंत लोकप्रिय होते जा रहे हैं। हाथियों की दौड़, कुश्ती और करतब तो नये नहीं हैं परन्तु हाथियों का खेल पोलो नया आकर्षण और आश्चर्य अवश्य है।

हाथियों पर बैठकर खेला जानेवाला खेल विश्वभर के सैलानियों को आकृष्ट करके जहां पर्यटन विकास में मददगार होगा, वहां हाथियों की बिगड़ती दशा सुधारने में भी सहायक हो सकेगा। राजस्थान पर्यटन विभाग द्वारा अपना प्रथम प्रयोग दो-तीन वर्ष पूर्व शुरू किया गया था जबकि जयपुर के 'चौगान' मैदान पर हाथी-पोलो खेला गया।

चौगान के मध्य सजे हुए हाथी और उन पर सवार खिलाड़ियों ने शेरवानी
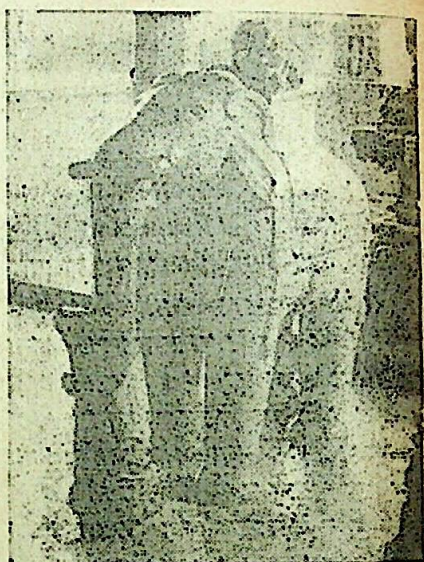
राजस्थान के रणकपुर मंदिर में हाथी की शिल्पाकृति

और चूड़ीदार पाजामे की परंपरागत पोशाकें पहन रखी थीं, महावत पीली पगड़ियां बांधे हुए—देशी रियासतों या रजवाड़ों के समय सजे हुए हाथियों पर परंपरागत पोशाकों में सवार लोगों की शान-शौकत की स्मृति दोहरा रहे थे। हाथी अपनी सरल मुद्रा के साथ पंक्तिबद्ध खड़े थे। हाथियों ने एक साथ अपनी सूंड उठाकर नमस्कार की मुद्रा बनायी। और इसके बाद केसरिया' और 'कसुमल'—इन दो परम्परा के साथ जुड़े हुए रंगों के नामों पर बनायी गयी टीमों के बीच हाथी-पोलो का खेल शुरू हुआ। रेफरी ने फुटबाल की

साइज की एक बाल मैदान में डाली और दोनों टीमों के तीन-तीन हाथी—पूरी तरह सजे हुए—हरकत में आ गये। लेकिन खिलाड़ी द्वारा महावत को निर्देश दिये जाने और हाथियों को उसी के अनुसार निर्देशित करने के बीच का एक फासला होने के कारण खेल की गति में निरन्तरता का अभाव रहा। परन्तु कमियों के बावजूद यह एक नया अनुभव और अनूठा आयोजन था।

इस आयोजन की उपयोगिता के कारण अब यह खेल ही नहीं, हाथियों के विविध कमाल प्रदर्शित करने के लिए हर वर्ष जयपुर में राजस्थान पर्यटन विभाग द्वारा हाथी समारोह का आयोजन होने लगा है। इससे, सामंती संदर्भों और वैभव से कटे हुए हाथियों और महावतों को बिगड़ती हुई स्थिति में एक नया पड़ाव आया है और एक नये धरातल का प्रारम्भ हुआ है। यद्यपि यह एक सीमित दायरे में ही प्रयोग है।

यह रोचक आयोजन—खेल का खेल और पर्यटन की दृष्टि से लाभदायक कार्य है।

इस वर्ष भी होली के अवसर पर १६ मार्च को जयपुर के 'चौगान' मैदान में 'हाथी-समारोह' का आयोजन राजस्थान पर्यटन विभाग द्वारा किया गया, जिसमें परम्परागत ढंग से सजे हुए हाथी, हाथियों का शृंगार, हाथियों की दौड़, हाथी-पोलो आदि प्रमुख आकर्षण थे। होली के रंगों की छटा में यह एक नया और रोमांचक रंग था।

—४३ सी, इन्स्ट्रूमेन्टेशन टाऊनशिप,
कोटा—३२४००५ (राजस्थान)

□

चिता बनाम चिंता

एक राज्य में एक पहलवान था। राजा चाहता था कि उसका वज़न कम हो। राजा की आज्ञा से उसका पहले एक समय का, फिर दोनों समय का भोजन बंद कर दिया गया। केवल दोनों समय फलाहार दिया जाता था। पर एक माह के बाद राजा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उसने पाया कि पहलवान की सेहत पर कोई असर नहीं पड़ा। एक दरबारी ने सलाह दी कि महाराज, यदि आप इसका वज़न घटाना चाहते हैं तो मैं उपाय बता सकता हूं। राजा ने दरबारी की राय के अनुसार पहलवान को आदेश दिया कि आज से प्रतिदिन रात को ठीक दस बजे राजमहल में आकर हाजिरी देनी है, यदि एक मिनट भी देर हुई तो उसका सिर कलम कर दिया जायेगा।

राजा ने साश्चर्य पाया कि पांच दिन में ही 'पहलवान' का स्वास्थ्य गिर गया। दरबारी ने कहा, 'महाराज, व्यक्ति हर हाल में जिंदा रह सकता है, कम खाकर जी सकता है, पर यदि उसे कोई चिंता लग जाये, तो वह उसे चिता तक ले ही जाती है।'

—श्रीकांत कुलश्रेष्ठ

□

नया वर्ष

□ शिवनारायण सिंह

समूचा वातावरण नये वर्ष की उमंगों से उमंगित हुआ जा रहा था। हर ओर अनोखा उल्लास फूटा पड़ता था। बीता हुआ वर्ष हरे-हरे कोमल पत्ते पर शबनम की बूंद की तरह लुढ़क कर जैसे ओझल हो चुका था। नवीनता फूटी पड़ रही थी जर्रे-जर्रे से। राह पर नर-नारी-बच्चे-बूढ़े नये परिधानों में बने-संवरे मस्ती में घूम रहे थे। कहीं कोई किसी को गले लगाता नजर आता तो कहीं कोई एक-दूसरे से हाथ मिलाकर अभिवादन करता फिरता। कोई बीते कल की भूलों को भुलाकर नये वर्ष में नूतन संकल्पों को लेकर चलने की बात कहता तो कोई नये वर्ष को अपने ढंग से मनाने के सुझाव देता। राकेश के मित्रों में से कुछ तो सुबह-सुबह ही पिकनिक मनाने शहर से दूर चल पड़े थे खूब हो-हल्ला, धूम-धाम मचाने। कुछ मित्रों ने नये वर्ष पर फिल्म देखने का प्रोग्राम बनाया था। कुछ दोस्त चिड़िया-घर जाकर मौज मना रहे थे। राकेश ने भी घर पर शाम को कुछ मित्रों को चाय-नाश्ते के लिए बुलाया था। उसने मम्मी से कुछ मामूली-से व्यंजन बनाने को कह रक्खा था। नये वर्ष की नयी सुबह वह नहा-धोकर अच्छे कपड़े पहने बाजार जाने को बाहर सड़क पर आया ही था कि तभी सड़क की एक ओर उसे सायकिल के साथ लंगड़ाता हुआ कोई नज़र आया। पास आने पर उसने पाया कि यह तो विलियम ब्रेडवाला था, जो सायकिल पर बड़े-बड़े थैलों में ब्रेड, टोस्ट, मक्खन और केक लिए मुहल्ले-मुहल्ले बेचने के लिए निकला था कि तभी अंधेरे में एक बड़े से पत्थर से सायकिल टकरा जाने से उसके पैरों में चोट आ गयी थी। थैले में से कुछ चीजें सड़क पर बिखरकर व्यर्थ भी हो गयी थीं। विलियम से दो कदम भी चला न जा रहा था। इतना सारा माल गली-कूचों में घूमकर आज वह न बेच पाया तो उसे कितनी हानि होगी! साथ ही घर पर बीमार पड़े अपने लड़के की दवाई भी वह शाम तक कैसे खरीद पायेगा, इन चिंताओं के मारे उसका बुरा हाल हुआ जा रहा था। हर किसी पर नया वर्ष मनाने का नशा सवार था। उसकी ओर देखने की फुर्सत ही किसे थी?

राकेश उसे ढाढ़स दिलाता हुआ बोला— 'आप चिंता न करें विलियम अंकल! मैं सायकिल चलाना जानता हूं। आप सिर्फ

अपने ग्राहकों के ठीक-ठिकाने और उनके गली-मुहल्ले बतला दीजिए। शाम को सारा माल बेच कर सीधे आपके मकान पर पहुंचता हूं। आप इसी वक्त घर लौट जायें। विलियम से माल सहित सायकिल लेकर राकेश डगर-डगर, बस्ती-बस्ती जा पहुंचा। विलियम के हर ग्राहक से उसने नम्रता और शिष्टतापूर्ण व्यवहार करते हुए नये साल का सूरज ढलने तक उसका सारा माल हाथों-हाथ बेच डाला। उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। केक, बटर, टोस्ट बेचकर मिले रुपये उसने संभाल कर अपने रूमाल में बांध लिए और बूढ़े विलियम के घर की ओर तेजी से सायकिल दौड़ाने लगा। सारा माल आज बिक चुका। केक का एक टुकड़ा तक शेष न लौटा थैले में। यह देखकर बूढ़े विलियम के नयनों से खुशी के आंसू लुढ़क पड़े। राकेश से बिके हुए माल के पैसे संभालते हुए विलियम ने उस पर शुभ आशीषों की झड़ियां लगा दीं। वह बोला—'प्यारे बेटे! आज तुमने मुझे बर्बाद होने से बचा लिया अन्यथा कल बासी माल मुझसे भला कौन खरीदता?'

अपने घर लौटते हुए राकेश को देर हो गयी थी। दूकानें सभी बंद हो चुकी थीं। वह खाली हाथ घर लौट कर मम्मी से क्षमा-याचना करते हुए सच-सच बात बतलाने लगा तो वे पुलकित होते हुए बोल उठीं—'कौन कहता है कि नये वर्ष पर तू खाली हाथ घर लौटा है? तू तो अपने संग दुआओं की वह अनोखी सौगात साथ लाया है, जो कभी खाली न होगी। अपनी ही खुशियों की खातिर ऊधम मचा कर नया वर्ष मनाने वालों से कहीं बढ़कर तूने जिस खूबसूरती से नूतन वर्ष मनाया है, उसकी मिसाल कहीं ढूंढ़ने पर भी न मिल सकेगी।' राकेश के घर पर उसके उपस्थित मित्र चाय की चुस्कियां लेते हुए बोले—'सच दोस्त! तुमने जिस ढंग से नया वर्ष मनाया है, उसकी तो कल्पना तक नहीं की जा सकती। गीता, बाइबिल, कुरान पढ़कर भी जो कुछ भी सीख नहीं पाता, तुमने ऐसा आदर्श प्रस्तुत किया है।'

□

जाड़े का मेवा—मूंगफली

□

उमेशचंद्र पाण्डेय

यूं तो मूंगफली वर्ष के बारहों महीने मिलती है, किन्तु शीतऋतु की शुरुआत में नयी (ताजी) और दूधभरी, मिठासयुक्त मूंगफली आने लगती है। मूंगफली को कुछ लोग 'देशी काजू' कहते हैं तो कुछ 'गरीबों का मेवा'। पौष्टिकता की दृष्टि से मूंगफली है भी अति उपयोगी। बालू रेत में भुनी मूंगफली खाने के बाद थोड़ा-सा गुड़ खाना लाभकारी होता है।

जाड़े की ऋतु आ गयी है। अब नयी मूंगफली भी बाजार में उपलब्ध है। यह पौष्टिकता में काजू, बादाम, अखरोट आदि से भी कहीं ज्यादा श्रेष्ठ है। हमारे देश के ग्रामीण अंचलों में रहने वाले अधिकांश लोगों में यह गलत धारणा है कि मूंगफली खाने से खांसी, जुकाम, सिरदर्द, पेट में दर्द तथा पेचिश आदि कष्ट हो जाते हैं, किन्तु ऐसा कोई खतरा नहीं है।

मूंगफली का पौधा शिम्बीकुल (लेग्यूमिनोसी फैमिली) के अन्तर्गत आता है। विश्व भर से मूंगफली की बहुत-सी जातियां व प्रजातियां अभिलेखित की जा चुकी हैं। क्षेत्रीय भाषाओं में मूंगफली को विभिन्न नामों से जाना जाता है—अंग्रेजी में 'ग्राउण्डनट'; संस्कृत में 'भूशिम्बिका'; गुजराती में 'मांडवी'; मराठी में 'मुगांची'; फारसी में 'मूलियन'; तमिल में 'वेरकदलाई' तथा लैटिन में 'एराचिस हाइपोजिया' आदि। ग्रामीण क्षेत्रों में लोग मूंगफली को 'चिनिया बादाम' या 'चीना बादाम' के नाम से जानते हैं।

मूंगफली में पाये जाने वाले एमीनो अम्ल (जिनसे प्रोटीन बनती है।) निम्न हैं, इससे मूंगफली की पौष्टिकता का अन्दाजा लगाया जा सकता है।

आर्थीनिन १३.६%
हिस्टीडीन २.०%
लाइसिन ४.४%
सिस्टीन १.२%
ट्रिप्टोफेन ०.७%
टायरोसिन ५.४%

मूंगफली से तेल निकालने के बाद अवशिष्ट पदार्थ (खली में) में एक बड़ी मात्रा में प्रोटीन शेष रह जाती है। इसका उपयोग पशु-चारे (कैटिल फीड) के रूप में किया जाता है। प्रोटीन तथा चर्बी से भरपूर होने के कारण मूंगफली की गणना सुपाच्य (जल्दी पचने वाले) खाद्यों में की जाती है। मूंगफली की प्रोटीन ९६.४ तक पाचन योग्य होती है। यह
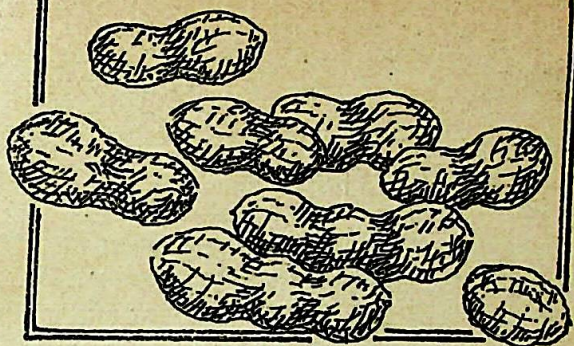
प्रोटीन सोयाबीन, बादाम, अखरोट, रामदाना, काजू, मक्खन, दूध व पनीर आदि से प्राप्त प्रोटीन से उच्च श्रेणी की होती है। अतएव पोषण की दृष्टि से मूंगफली हमारे शरीर में प्रोटीन की आपूर्ति करने में सक्षम है। मूंगफली में १८ प्रतिशत कार्बोहाइड्रेटस पाये जाते हैं। मूंगफली में पाये जाने वाले प्रमुख विटामिन हैं :– विटामिन बी–१; विटामिन बी–२; निकोटिनिक एसिड; विटामिन 'ई'; लिसीथीन; और पाइरोडाक्सीन आदि।

मूंगफली स्वाद में कटु, मीठी, शीघ्र पचनशील, तीक्ष्ण और तासीर (प्रभाव) में गर्म होती है। यह उत्तेजक, वायुसारक, मूत्रजनक, पीड़ाहर, क्षयनाशक और अग्निदीपक होती है। इसका प्रभाव मुख्य रूप से पाचन एवं परिवहन (रक्त संचार) संस्थान पर होता है।

मूंगफली का तेल पौष्टिक, कान्तिवर्धक, व्रणरोधक होता है। गुणों में यह जैतून के तेल के समान ही होती है। यूनानी और आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धतियों में मूंगफली का तेल 'कफ' और 'बात' उत्पन्न करने वाला है। चर्मरोगों (दाद, खाज, अकौता आदि) में मूंगफली के हल्के गर्म तेल की मालिश आहिस्ते-आहिस्ते करने से लाभ होता है। हाथ, पैरों और जोड़ों के दर्द में इसकी मालिश गुणकारी साबित होती है।

बच्चों को नियमित रूप से, सीमित मात्रा में, मूंगफली खिलाने से उनकी भूख खुलती है, साथ ही वे 'कुपोषण' के शिकार नहीं हो पाते।

दूध पिलाने वाली माताओं को भुनी हुई नयी मूंगफली खिलाने से दूध की मात्रा में वृद्धि तो होती ही है, साथ ही बच्चों में प्रोटीन की कमी भी नहीं हो पाती। इस प्रकार कुपोषण जैसी जानलेवा समस्या से छुटकारा मिल जाता है।

अन्त में, यह अवश्य याद रखना चाहिये कि–किसी भी वस्तु का अतिमात्रा में प्रयोग हानिकर साबित होता है। मूंगफली का आवश्यकता से ज्यादा मात्रा में सेवन करने से दस्त (पेचिश) व पेट दर्द की सम्भावना रहती है।

–बी-१२, मॉडलटाउन, बरेली
२४३००५ (उ. प्र.)

□

लोकोक्तियों के बोल और स्वास्थ्य

□

श्रीकान्त पाण्डेय

औषध विज्ञान से हमारा नाता पुराना है। विश्वविख्यात हमारे भारतीय चिकित्सकों से ही हमारे पूर्वजों ने जो अनुभूत ज्ञान अर्जित किया, उसे संजो-संजोकर पीढ़ियों-दर-पीढ़ियों तक पहुंचाने के लिए सर्वहारा के लाभार्थ जन-सामान्य के बोल-चालवाली आम भाषा में सीधी, सरल किंतु रोचक ढंग से कहावतों-दोहों-लोकोक्तियों में सुरक्षित करने हेतु संचित किया। परंतु मशीनीकरण के युग ने हमें इनके दैनिक व व्यावहारिक तथ्यों से कोसों दूर कर दिया।

हम भूल गये कि इन्हीं व्यावहारिक और सार्थक मान्यताओं ने सैकड़ों वर्षों तक हमारी सभ्यता एवं संस्कृति का पल्लवन किया। अलबत्ता ये अपना महत्व रखते हुए भी बिखरकर लुप्त होती हुई लोकोक्तियां-दोहे-कहावतें इस वैज्ञानिक युग में भी बहुत उपयोगी हैं। प्राचार्य, चिकित्सक, मंत्र-द्रष्टा, महान कवि, महान योद्धा, अन्यान्य वैज्ञानिक विधाओं के ज्ञाता एवं शोध-कर्ता, साहित्यकार एवं दार्शनिक धन्वंतरि ने गहन विवेचन एवं अपनी विज्ञानशाला में सभी विश्लेषण के बाद कहा था—'हमारे देश में उत्पन्न वस्तु ही हमारे लिए उचित और पथ्य है।' आवश्यकता है इन्हें संग्रहीत कर लाभ उठाने की। विशेषतया ऐसी दशा के परिप्रेक्ष्य में, जब कि हमारे भारत देश में इस समय मोटे तौर पर स्वास्थ्य सेवाओं में लगे प्रशिक्षित लोगों की संख्या पांच लाख है। इनमें एक लाख पचास हजार के करीब एलोपैथ डाक्टर हैं तथा तीन लाख के लगभग वैद्य एवं होम्योपैथ हैं, और पचास हज़ार से अधिक मिश्रित चिकित्सा प्रणाली के लोग हैं। इस प्रकार हर एक हज़ार दो सौ व्यक्तियों के पीछे एक डाक्टर है। यदि केवल एलोपैथ डाक्टरों को ही लिया जाय तो हर पांच हज़ार व्यक्तियों के पीछे एक डाक्टर है।

भारत की जनसंख्या का अस्सी प्रतिशत देहातों में बसा है। किंतु विचित्र बात तो यह है कि शहरों में बसी केवल बीस प्रतिशत जनता के लिए देश के अस्सी प्रतिशत डाक्टर व देहातों के लिए केवल बीस प्रतिशत डाक्टर उपलब्ध हैं। इसके बावजूद भी गांवों में प्राणदाता चिकित्सकों और दवाओं के नाम पर आज जो कुछ हो रहा है, वह किसी से छिपा नहीं है।

संप्रति वस्तुस्थिति यह है कि आज हमारे देश की जनसंख्या के मात्र १५ से बीस प्रतिशत भाग को ही स्वास्थ्य सेवाएं

उपलब्ध हैं। और ग्रामीण क्षेत्रों में होने-वाली ५७ प्रतिशत मौतें किसी संस्थान में डाक्टरी सुविधा के अभाव अथवा डाक्टर द्वारा परीक्षण किये जाने के विना ही होती हैं। देश की वास्तविक सुंदरता उसकी जनता का स्वास्थ्य बतायी जाती है। यह दुर्भाग्य पूर्ण है कि यह सुंदरता व्यापक बीमारी, दुर्बलता, अपरिपक्व मृत्युओं, ग्रामीण क्षेत्रों और शहरों की झुग्गी-झोपड़ी बस्तियों की अत्यंत अस्वस्थ-कर और दूषित हालतों के कारण बुरी तरह कलुषित है।

अस्तु, उपर्युक्त विषम स्थिति में रोगमुक्त होने का सबसे सहज उपाय यह है कि विकृति मार्ग को छोड़कर प्रकृति वनस्पतियों—जड़ी बूटियों की ओर लौटा जाये, जो कि भारतीय परंपरा का एक अपरिहार्य अंग रही है। इसलिए आइये, आज चुनौतियों भरे जीवन के बीच दवा और नीम हकीम अधकचरे डाक्टर का चक्कर छोड़कर प्राकृतिक वनस्पतियों की शरण में पुनः जाकर 'पहला सुख निरोगी काया' प्राप्त करने हेतु रोग मुक्त हों।

किस माह में मनुष्य को किस वस्तु का सेवन उसके शरीर के लिए हानिकारक हो सकता है :

चैते गुड़, बैशाखे तेल।
महुआ जेठ, असाढ़े बेल।।
सावन साग न भादों मही।
क्वार करेला, कातिक दही।
अगहन जीरा, पूस घना।
माघ में मिश्री, फागुन चना।
इन नियमों को माने नहीं।
मरे नहीं तो परे सही।।

किस माह में मनष्य को किस वस्तु का सेवन उसके लिए लाभप्रद है :

कातिक दूध, अगहन में आलू, पूस पान और माघ रतालू।
फागुन शक्कर घी जो खाये,
चैत आंवला कच्चा चबाये।
वैशाखे जो खाय करेला,
जेठे दाख असाढ़े केला।
सावन निशि में जब, तब खाये,
भादों ब्यार कबहिं नहीं पाये।
क्वार कामना देय बचाय,
तो सत वर्ष आयु हो जाय।

एक अन्य स्वास्थ्य संबंधी कहावत में निर्देशित किया गया है :

सावन हर्रे भादों चीत।
क्वार मास गुड़ खायो मीत।
कातिक मूरी अगहन तेल।
पूस में करै दूध से मेल।
माघ घिव-खिचरी खाय।
फागुन उठ के प्रात नहाय।
चैत मास में नीम बेसहनी।
बैसाखे मां खाय जड़हनी।
जेठ मास जो दिन को सोवे।
वोकर ज्वर असाढ़ मां रोवे।

दांतों की सुरक्षा के लिए यह जरूरी है कि अधिक गर्म भोजन और अधिक गर्म जल आदि के सेवन से बचा जाये। तभी तो कहा है :—

अति तातो जल-पय पिये, औ भोजन जो खाय।
बाकी बत्तीसी सभी, ज्वानी में झर जाय।

दांतों की टीस और उस पर जमे मैल से मुक्ति पाने के लिए—

नमक महीन मिलाइये, अरु सरसों का तेल।
नित्य मले टीसन मिटे, छूट जाये सब मैल।

और दंत-रक्षा के लिए, जिस पर बहुत कुछ स्वास्थ्य संवर्धन निर्भर है, नीम दातुन की उपयोगिता प्रत्येक व्यक्ति जानता है—

नीम दतूनी जो करैं, भूनी हर्रं चबाय।
दूर बियारी नित करैं, तिन घर वैद्य न जाय।

अच्छे स्वास्थ्य के लिए मंजन बनाने की विधि:—

त्रिफला, त्रिकुटा तूतिया, पांचो नमक, पतंग
दंत वज्र सम होत हैं, माजूफल के संग।
अरु छिलका बादाम का, दीजे खूब जलाय।
पिपरमेंट, कपूर सौं, मंजन लेय बनाय॥

भूख नहीं लगती। भोजन से अरुचि होना स्वाभाविक है। इससे छुटकारा पाने का नुस्खा:

किशमिश एक छंटाक ले, दीजे रात्रि भिगोय।
प्रातः नमक संग खाइये, कालीमिर्च मिलोय॥
पुनः छंटाक भिगोइये, और मट्ठा आधा सेर।
व्रत रहकर निशि खाइये, महीने भर दो बेर॥

गले में खराश होती है, फिर जिस्म में हल्की-सी कंपकपी; और तभी छींक का पहला दौर आता है। बस, तुरंत अनुमान हो जाता है कि सर्दी-जुकाम के दुष्ट विषाणुओं ने हमें एक बार फिर दबोच लिया है।

जुकाम की परेशानी से छुटकारा पाने का सर्वसुलभ नुस्खा लोकोक्तियों में है, और यह परेशानी होती क्यों है, इस संबंध में बड़े अनुभवी वर्णन भी हैं:

जबहिं अन्न नहीं पच सके,
कब्ज रहे कुछ काल।
खांसी सहित जुकाम हो,
तन को करे बिहाल।
उठे अचानक सोय के, दायें स्वर की चाल।
तुरतहिं शीतल जल पिये,
होय जुकाम तत्काल।
दौड़े या व्यायाम सो, आवे तन में स्वेद।
तुरतहि शीतल जल पिये, ये जुकाम के भेद।

जुकाम की परेशानी से आजन्म बचाव का अक्सीर उपयोगी नुस्खा:—

यदि अभिलाषा हिरदय की,
कबहुं न होय जुकाम।
पानी पीजे नाक सों, पहुंचावे आराम।

दमा, श्वास, कांस, खांसी, सर्दी, बुखार ये पुराने रोग हैं। इस कारण इनसे बचाव के संबंध में आजमूदा कई औषधि-नुस्खों से युक्त ढेर सारी लोकोक्तियां और दोहे हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

छोटी पीपर शहद में, नित्य नियम सो खावे।
प्रातः निहार मुंह जो खाये, दमा, श्वास मिट जावे।
सोंठ, कुलंजन, मिर्च, बच्च, पीपर, पतरज,

पान।
इन्हें कूट गोली करे, श्वास, कांस की हान।।
इमली की पत्ती हरी, रत्ती हींग मिलाय,
सेंधा नमक मिलाय के काढ़ा लेय बनाय।
जब चौथाई जल रहे, गर्म-गर्म पी जाय,
यहि प्रकार कुछ दिन पिये, सूखी खांसी जाय।

काली खांसी होने पर दिन का चैन, रातों की नींद हराम हो जाती है। इससे मुक्ति पाने का सरल उपाय नीचे लिखी लोकोक्ति में बताया गया है :

कालीमिर्च महीन पिसावे,
आक-पुष्प और शहद मिलाय।
चटनी भोजन प्रथमहि खावे
सूखी खांसी झट मिट जाय।

दस्त, खूनी आंव, बवासीर, प्रदर आदि ऐसे रोग हैं, जिन्हें बयान करने में रोगी शर्माता है। इनसे छुटकारा पाने के लिए भी मूल्यवान नुस्खे दोहों में हैं :

हरी दूब कुचल के, लीजे स्वरस निकाल।
आधा तोला पीजिये, आंव व दस्त मिटे तत्काल।
गाय के मूत्र में हर्र लघु, दो तोला पिसवाय।
गुड़ संग प्रातः खाइये, बवासीर मिट जाय।
धूनी दीजे भांग की, बवासीर नहीं होय।
जल में घोले फिटकरी, शौच समय नित धोय।
सूखी गुठली आम की, लीजे भीगी निकाल।
चूर्ण फांक पय लीजिये, प्रदर मिटे तत्काल।

कान, नाक के रोग हेतु :

पीले पात मदार के, घृत को देय लगाय
तात-तात रस डालिए, कर्ण शूल मिट जाय।
अर्क सुदर्शन पात का गर्म कान में डाल।
कानन के दर्द कू, मेटत है तत्काल।
कड़वा तेल नित नाक लगावे।
ताको नाक-रोग मिट जावे।।

सिर और पेट दर्द के लिए :

घृत, कपूर को लीजिए,
एकहि साथ मिलाय।
सिर माथे पर रगड़िए,
देवे दर्द मिटाय।

× × ×

तोला गुड़ प्राचीन ले,
चूना माशा चार।
दोऊ मिला कर खाइये,
देवे उदर दर्द निकार।

आंखों के रोग—रतौंधी व परवाल आंखों के बड़े गंभीर रोग हैं। इनकी चिकित्सा वर्तमान में जहां केवल शल्य चिकित्सा है, वहीं दोहों तथा लोकोक्तियों में बड़े ही सहज उपाय वाले नुस्खे हैं :

अदरख तथा प्याज रस,
सिर्स पात रस लाय।
रोग रतौंधी दूर हो,
नेत्रन इक माह लगाय।।

फोड़ा, फुन्सी, दाद, खाज-खुजली, उकौता, मवाद आदि के लिए बेहतरीन नुस्खों में से कुछ ये हैं :

अपामार्ग के पात की,
टिकिया लेय बनाय।
कड़ुवा तेल में भून कर,

बांधे फोड़ा जाय।

×

अरहर दाल जलाय के,
दधि में देई मिलाय।
पकी खाज पर लेपिये,
देवे रोग मिटाय।।

बिच्छू काटने पर जो असह्य पीड़ा होती है, उससे छुटकारा पाने के लिए :

लहसुन, दूध-मदार को,
दोनों संग मिलाय।
बिच्छू काटे पर धरे,
तुरतहि विष मिट जाय।।

× × ×

लाल दवा में दीजिए, नींबू अर्क मिलाय।
बिच्छू काटे पर धरे, जहर डंक सौ जाय।।

कुत्ता, काटे की औषधि लोकोक्ति में :

कुत्ता काटे ठौर पर, दे चूना चिपकाय।
जब-जब पीला रंग हो, बारंबार लगाय।।

इसी तरह यदि :

किसी शस्त्र से तन कट जावे।
चूना भरे पकन नहीं पावे।

बालों को झड़ने से बचाने और :

बाल सफेद न बाके होवे।
त्रिफला जल से जो सर धोवे।

दोहों व लोकोक्तियों में विभिन्न रोगों से छुटकारा पाने के, जैसा कि अभी आपने ऊपर पढ़ा, उपाय हैं—वहीं विविध जड़ी-बूटियों जैसे तुलसी, अदरख, लहसुन, मूली, लौकी आदि के गुणों व अच्छे स्वास्थ्य तथा खान-पान के निर्देश भी मिलते हैं। एक लोकोक्ति में तुलसी के विषय में कहा गया है कि—

प्रतिदिन तुलसी बीज जो,
पान संग नित खाय।
रक्त, धातु दोनों बढ़ें नामर्दी मिट जाय।
ग्यारह तुलसी पत्र जो, स्याह मिर्च संग चार।
तो मलेरिया इकतारा, मिटे सभी विकार।।

आज के तनाव भरे जीवन में नींद न आने से रातें करवटें बदलते गुजरी जाती हैं, ऐसी स्थिति में नीचे लिखी दवाओं का प्रयोग अक्सीर होता है—

गुड़ संग मिलाय के पीपल मूर जो खाय।
कहें भड्डरी भाय जी, गहरी निद्रा आय।

इस प्रकार की बहुत सी लोकोक्तियां हमारे साहित्य में मिलती हैं, जिनके अनुरूप उपचार करने से अनेक रोगों से सहज ही मुक्ति पायी जा सकती है।

—५००/१८३, कुतबपुर, लखनऊ-७

□

सत्य की बात

सत्य परेशान था। अतः मंदिर से निकलकर उसने आश्रम का दरवाजा खटखटाया। आश्रम ने कहा, 'पिछले दरवाजे पर आओ।'

जब वह उधर पहुंचा तो आश्रम ने उसके सामने कुछ शर्तें रखीं और कहा, 'इन शर्तों को मानोगे, तभी आश्रय मिलेगा।'

पता नहीं सत्य ने शर्तें मानीं या नहीं, पर इतनी बात सत्य है कि मंदिर से सत्य आज भी गायब है।

—शंकर पुणतांबेकर

पद-चिन्हों पर अंकित मानव व्यक्तित्व

□ दुर्गेश

शहरी सभ्यता के तीव्र विकास के साथ-साथ विश्व में अपराधजन्य कर्म भी निरन्तर बढ़ रहे हैं। और इसी अनुपात में अपराधियों को यथाशीघ्र ढूंढ़ने के साधनों में भी वृद्धि हो रही है। वस्तुतः बहुत कम अवसरों पर ही अपराध कर्म रंगे हाथों पकड़े जाते हैं। प्रायः अपराधी के अपराध करने के पश्चात् ही उसके द्वारा छोड़े गये विभिन्न उपकरणों और चिह्नों के सहारे उसकी खोज शुरू की जाती है।

इस संदर्भ में वर्तमान पुलिस प्रशासन काफी सशक्त है। और आज सरकार के पास अपराध-अन्वेषण के पर्याप्त साधन भी उपलब्ध हैं। लेकिन आज से कुछ समय पूर्व इस प्रकार के कोई सशक्त साधन उपलब्ध नहीं थे। राजस्थान जैसे रेतीले प्रान्त में तो गांव और ढाणियां काफी दूर-दूर तक बसे हुए हैं। और विभिन्न गांवों के रास्तों का भी कोई विशिष्ट निर्धारण नहीं है। स्वतंत्रता से पहले तक प्रशासनिक दृष्टि से भी वहां के गांव शहरों से अच्छी तरह से जुड़े हुए नहीं थे।

उस समय किसी घटना का पता लगाने, किसी व्यक्ति को ढूंढने और अवांछित गतिविधि करने वाले व्यक्ति की तलाश स्थानीय लोग ही करते थे। राजस्थान में पदचिह्नों को खोज कहते हैं। और किसी व्यक्ति के पदचिह्नों को देखकर उसके व्यक्तित्व की व्याख्या करने वाला व्यक्ति खोजी या पागी कहलाता है। गांवों के ये सामान्य लोग व्यक्ति के खोज को देखकर उसके आचार-व्यवहार को निरूपण करने में असामान्य होते हैं।

खोजी केवल मानव पदचिह्नों के ही विशेषज्ञ नहीं होते प्रत्युत पशुओं के पद-चिह्नों को देखकर भी ये ऐसी-ऐसी बातें बताते हैं जिन्हें सुनकर आश्चर्य से दांतों तले अंगुली दबानी पड़ती है।

गाय, भैंस, ऊंट आदि की चोरी हो जाने पर इन पागी-खोजी व्यक्तियों की सहायता ली जाती है। कई-कई पागी तो इतने कुशल होते हैं कि वे पशुओं के पद-चिह्न देखकर उनकी नस्ल तक बतला देते हैं। ऐसे खोजी भी हैं जो पशु विशेष की दूसरी-तीसरी पीढ़ी के खोज देखकर बता देते हैं कि यह अमुक भैंस या ऊंटनी की संतान है। ये खोजी पशुओं के पदचिह्न देखकर यहां तक बता देते हैं कि अमुक खोज वाली गाय या भैंस ब्याई हुई है या नहीं।

खोजियों के निर्णय बहुत ही विश्वस्त और सही होते हैं जिसके लिए निम्नलिखित कहावत बहुत ही प्रसिद्ध है—

'वादी (जिद्दी) हारे, खोजी जीते।'

खोजियों में विशेषतः मीणा, रैवारी, बावरी, कोई-कोई जाट, राजपूत व अन्य लोग जो विशेष रूप से पशु रखते हैं, होते हैं। किसी के चोरी हो जाने पर चोर को ढूंढ़ने के लिए खोजी को साथ लेकर 'वार' चढ़ती है। वार में कई तरह के व्यक्ति होते हैं, जो प्रायः आगे बढ़ने के लिए जल्दी करते हैं। लेकिन खोजी खोजों के सहारे धीरे-धीरे चलता है। चोर प्रायः वार वालों को भ्रम में डालने के लिए कभी बायें, कभी दायें और कभी-कभी पीछे भी लौट जाते हैं। किन्तु चतुर खोजी इस बात का विशेष ध्यान रखते हैं कि खोज इधर-उधर होकर वापस लौटे हैं या आगे ही गये हैं।

प्रायः हर गांव में इस तरह का कोई न कोई खोजी व्यक्ति मिल जाता है। अगर किसी खास मामले में स्थानीय खोजी से वांछित व्यक्ति की पहचान नहीं होती तो बाहर से किसी बड़े खोजी को बुलाया जाता है। इन खोजियों को वस्तुतः पदचिह्नों का अति विशिष्ट ज्ञान होता है और इनका निष्कर्ष सर्वथा सत्य निकलता है।

ये खोज विशेषज्ञ व्यक्ति के पदचिह्नों की लम्बाई, चौड़ाई, आकार, पृथ्वी पर उनका दबाव, उनकी दिशा, फासला, रेखा, झुकाव, मोड़ और अन्य बातों से उसके बारे में बता देते हैं कि अमुक खोज वाला व्यक्ति किस प्रकार के आकार-प्रकार, प्रकृति और स्वभाव का है।

गांवों में चोरी, ठगी या अन्य कोई घटना हो जाती है तो लोग घटनास्थल पर अंकित पदचिह्नों के अनुसरण पर अपराधी को ढूंढ़ते ही हैं, साथ ही वहां पाये जाने वाले पदचिह्नों को परात, छाजले, खारिये, तगरे, कुंडे या अन्य चीजों से ढक देते हैं, ताकि पृथ्वी पर पदचिन्हों का आकार और उभार स्पष्ट बना रहे। फिर किसी खोजी व्यक्ति को बुलाकर उन पदचिह्नों की जांच करवाते हैं। खोजी व्यक्ति रेत पर बने उन पदचिह्नों का गहरा अध्ययन करके अपराधी व्यक्ति की लम्बाई, चेहरा, स्वभाव, प्रकृति, चरित्र, आयु और मनःस्थिति का सांगोपांग विवरण दे देता है। और उस विवरण के आधार पर अपराधकर्मी की तलाश अत्यधिक सरल हो जाती है। खोजी व्यक्ति एक बार किसी पदचिह्न का अवलोकन कर लेने पर उसे सदैव याद रखता है। उसके सामने पहले का देखा हुआ पदचिह्न आ जाने पर वह तुरन्त बता देता है कि यह तो अमुक व्यक्ति का पदचिह्न है। और उसका यह निर्णय पूर्णतः सही होता है इस प्रकार के व्यक्ति गांव में किसी बाहरी व्यक्ति का खोज देखकर तत्काल बता देते हैं कि यह तो किसी ओपरे (पराये) व्यक्ति का खोज है।

चोरी या उठाईगीरी का काम करने वालों को सबसे अधिक भय अपने पदचिह्नों का ही लगता है। और ऐसे व्यक्ति जब अपने कार्य पर निकलते हैं तो पांवों पर

खींप, सणियां, बुई या आक के पत्ते बांध लेते हैं ताकि पदचिह्नों के माध्यम से पहचान नहीं हो सके। लेकिन खोजी व्यक्ति इस प्रकार के पदचिह्नों से भी अपराधी का पता लगा लेते हैं। यही नहीं, ये खोजी यह भी बता देते हैं कि अमुक पदचिह्न वाले व्यक्ति ने किस परिस्थिति और मनःस्थिति में यह कार्य किया है। चोर चाहे बूट, जूता, चप्पल कुछ भी पहने किन्तु खोजी पदचिह्नों की बनावट से उसकी पहचान कर लेते हैं।

आज भी गांवों में इस प्रकार के खोजी व्यक्ति हैं, जो पदचिह्नों को देखकर अपराधी का पता लगा लेते हैं। लेकिन आंधी के मौसम में पदचिह्नों के आधार पर अपराधियों की तलाश करने में कठिनाई पैदा हो जाती है, क्योंकि तेज़ हवा के कारण व्यक्ति के पदचिह्न पृथ्वी पर अधिक देर तक स्थायी नहीं रह पाते। पक्के स्थान और सड़क पर भी पदचिह्न अंकित नहीं होते। अतः ऐसी जगह पर पदचिह्नों के आधार पर किसी की तलाश नहीं की जा सकती।

फिर भी बहुत से स्थानों पर पदचिह्नों की सहायता से अपराधी की खोज आसानी से की जा सकती है। वर्तमान काल में पदचिह्नों पर खड़िया मिट्टी डालकर उनके फोटो आदि लेते हैं।

आज के इस आधुनिक युग में इस परम्परा का तेजी से ह्रास हो रहा है। फिर भी इस कला का अपने में विशिष्ट महत्व है। वस्तुतः सरकार और समाज द्वारा इस कला को पूर्ण संरक्षण मिलना चाहिये।

—रामजस का कुआं, चुरू, राजस्थान

□

अभिमानी कुछ नहीं सीखता

एक आदमी थोड़ा-बहुत नजूम (ज्योतिष) जानता था। लेकिन उसे अपने ज्ञान का बड़ा अभिमान था। वह अपने ज्योतिष के ज्ञान को बढ़ाने के लिए कोशियार के पास गया। अबुल हसन कोशियार एक बहुत बड़ा नजूमी (ज्योतिषी) था। वह शेख अबू अली सीना का गुरू था। यह नजूमी बहुत दिनों तक कोशियार के पास रहा, किन्तु वह अपने ज्ञान को न बढ़ा सका। कारण कोशियार ने उसे कुछ न सिखाया था।

जब वह नजूमी कोशियार के यहां से खाली हाथ अपने वतन वापस होने लगा, तो कोशियार ने उससे कहा, 'तू मेरे पास बहुत दिन रहने पर कुछ न सीख सका, क्योंकि तेरा दिमाग़ गुरूर से भरा हुआ था। खाली बरतन में ही कुछ चीज़ भरी जा सकती है। भरे बरतन में और कुछ भरना मुश्किल है। मेरे पास से अगर कुछ लेना चाहता है तो खाली बरतन लेकर आ।

—मेवाराम गुप्त

□
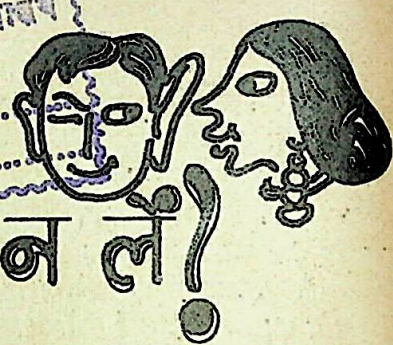
दो क्षण हंस न लें!

'हम तुम्हें इतनी देर से गालियां बक रहे हैं और तुम हो कि चुपचाप सुने जा रहे हो ! कमाल है !'

'जी आदत पड़ गयी है।'

'क्या मतलब है ?'

'मैं नेता हूं।'

०००

लीडर महोदय घर आये तो बरामदे में ही पुत्र को रोते पाया। पुत्र को गोद में पुचकारते हुए बोले—'बेटा, क्या हुआ ?'

'सामने वाले पप्पू ने मुझे बहुत बड़ी गाली दी है . . .' पुत्र ने रोते हुए बताया।

'क्या गाली दी थी ?' लीडर ने पूछा।

उसने मुझे 'लीडर का बच्चा' कहा।

०००

एक ही वोट मिला था और जमानत जब्त हो गयी थी। उन्हें सिर झुकाये चिंता में मग्न देख किसी ने सहानुभूति जतायी—'यार इतने मायूस क्यों होते हो ? फिर किस्मत आजमा लेना।'

वे बोले—'मैं हार के बारे में नहीं सोच रहा, सोच रहा हूं कि वह कौन बेवकूफ हो सकता है जिसने मुझे वोट दिया ?'

०००

'तुम ये सड़े टमाटर लेकर बैठे हो, सड़े टमाटरों को कोई पूछेगा भी क्या ?'

'ये सबके सब बिक जायेंगे !'

'क्या मतलब ?'

'आज शाम सामने वाले मैदान में अपने नेता का भाषण होने वाला है।'

०००

पढ़ने-लिखने से फायदा है तो न पढ़ने का भी अपना फायदा है। पढ़-लिखकर इंजीनियर, डॉक्टर, वकील बना जा सकता है, तो अनपढ़ रहकर लीडर और मिनिस्टर बना जा सकता है !

—बलवीर प्रसाद गुप्त

□

सु. रामकृष्णन् द्वारा भारतीय विद्या भवन, क. मा. मुन्शी मार्ग, बम्बई-४०० ००७ के लिए प्रकाशित तथा श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बंबई—४०० ००४ में मुद्रित।

Regd. No. BYW 203